



माया सीरीज न०

# जीवन-क्रम

[ कहानी-संग्रह ]

लेखक—

राजेश्वरप्रसाद सिंह

मूल्य—आठ आना

प्रकाशक—चितीन्द्र मोहन मिश्र,  
माया कार्यालय,  
इलाहाबाद

Copyright reserved with the publisher

मुद्रक—श्रीरेन्द्रनाथ,  
माया प्रेस,  
इलाहाबाद

## मतभेद

“सुनाते हा !”

“नही ।” क्लम रोमकर कागज से दृष्टि उठाकर, रमेश ने कहा ।

“रीजेंट थियेटर में ‘डेरिड कापरफील्ड’ दिखाया जा रहा है ।”

“ग्रन्धा ! ‘डेरिड कापरफील्ड’ डिक्से की सर्वोत्कृष्ट रचना है ।

किन्तु मेरा तो विश्वास है कि ये फिल्मवाले चार्ल्स डिक्से जैसे महान् लेखकों के साथ न्याय नहीं कर सकते ।”

“नहीं कर सकते ?”

“कदापि नहीं । क्रम से कम मेरी राय तो यही है । मूक फिल्मों के जमाने में एक बार मैंने ‘ए टेल आफ दू सिटीज’ देखा था । डिक्से की उस महान् रचना की जो दुर्गति की गइ थी, उसे देखकर मुझे तो बड़ा दुःख हुआ था ।”

“लेकिन जानकारों का विचार तो यह है कि फिल्म निमाण-कला आनकल उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँच गई है ।”

“यह उन्नति का युग है । प्रत्येक दिशा में उन्नति की दौड़ जारी पर है । अन्य कलायों की भाँति फिल्म निमाण-कला भी बहुत काफी उन्नति कर गई है । किन्तु मेरा तो यह दृष्टि विचार है कि फिल्म-निमाताओं को चार्ल्स डिक्से जैसे महान् लेखकों के पीछे न पड़ना चाहिए और कहानियाँ के लिए अपने ही कहानी लेखकों पर निर्भर रहना चाहिए ।”

“तुम्हारी इस राय से मैं सहमत नहीं हूँ । किसी मामूली कहानी के आधार पर बनी हुई सुन्दर फिल्म की अपेक्षा में उस मामूली फिल्म को अधिक पसन्द करूँगी, जो किसी सुन्दर कहानी के आधार

पर गयी हो। और कुछ न करी, किन्नाल क़म से क़म हम लागी में साहित्य प्रेम तो ज़मज़म कर ही रहे हैं।”

“वास्तविक, यथार्थ, उध क़ोटि के साहित्य के लिए दुगदुगी बज़ाज़ाज़ा की ज़रूरत न पड़नी चाहिए। ‘जुद्ध बह है ना खुद अपनी दुगध पेंक, न कि अत्तार उसका टिंकारा पीटे!’ साहित्य बह अन्न मन्दिर है, जिसके द्वार सदैव ख़ुल लिए खुले रहते हैं। उध क़ोटि के मानसिक मनोरञ्जना तथा शांती की कामना रखनेवाले सदैव यहाँ आते हैं और सन्तुष्ट होकर जाते हैं।”

“हम आद-जवादी हैं, स्वप्न-लोक के निवासी हैं। रिश्तेदार बरत बरते कहने में हमें मज़ा आता है। अगर मैं यह कहूँ कि मैं साहित्य का अपने क्षेत्र का विचार करना है, तो उसे व्यवसाय की ग़हायता प्रपश्य लेना होगी, तो इसके जवाब में फ़ोड़ न कां टेढ़ी-भाधी या मुस्ता कह दामे। ख़ैर, यह सब रहने दो। मन्तव्य की बात कर। करो, ‘डेमिड कापरपील्ट’ दरसन चलोगे!”

रमेश हँस पड़ा।

“बोलो!”

“नहीं चल सकता, प्रिय!”

“क्या?”

“यह लेख मुझ इसी समय समाप्त करना है। ‘टम्पेट’ का अपने अगले साप्ताहिक के लिए इसकी ज़रूरत है। कल ही इसे ख़ास कर देना होगा, ताकि देर न हो जाय।”

“सिनेमा से लौटने के बाद इसे आख़िरी से समाप्त कर सकते हो।”

“निरतने की मन स्थिति इस समय मौजूद है और इसे तगने का मौक़ा न देना चाहिए। रात को यह न लौटी वा क्या बरूँगा? इस ख़तरे में न पड़ूँगा। मुझे मुन्नाफ़ कर, प्रिये। आज अकेले ही चली  
— इम्हार साथ ज़रूर चलूँगा।”

‘अच्छी बात है, न जाओ।’ नाराज होकर, तेज़ी से उठकर आशा कमर में गान्धरी हो गई।

रमेश ने दीप निश्चय नहीं किया। आशा के स्वर ने, भाव-भंगी ने साफ कह दिया था संभला, तुम्हारी खैरियत नहीं। फ़िन्तु रूठी बीबी का माग लाने, उसके मन की करने या आगेवाले भगडे पर विचार करने के लिए उसके पास समय न था। कलम उठाकर वह अपने अग्र लेख पर ध्यान जमाने लगा।

साधे पार्टिका में पहुँचकर आशा मोटर-कार में बैठ गई। शोफर ने दरवाज़ा बंद कर दिया।

“मीनेट थियेटर चला।”

“बहुत अच्छा, सरकार।” वह अपनी सीट पर बैठ गया। कार चल पड़ी।

रमेश ने, उसकी आदतों से, उसकी भाव से, उसके विचारों से वह तग आ गई थी।

तीन वर्ष हुए, एक मिनट के घर पर रमेश से उसकी पहले-पहले मेंट हुई था और उम्र शत हुआ था कि उसका अतिरिक्त यह किसी अन्य पुरुष को प्यार नहीं कर सकती। वह भी उसकी आर आकृष्ट हुआ था। वह धनी था, स्वरूपगार था, लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिक था, सुनिश्चित पत्रकार था। वह भी सुन्दरी थी, स्वतंत्र प्रकृति की नय-सुवती थी और उसी वर्ष प्रेसुएट हुई थी। इस तरह दोनों एक-दूसरे के सर्वथा उपयुक्त थे। जब रमेश ने अपना प्रेम प्रकट किया, तब उसने भी अपना हृदय खोलकर रख दिया। दोनों ने विवाह कर लेने का निश्चय कर लिया।

जहाँ तब आशा का सम्बन्ध था, कोई कठिनाई न थी। उसी की भाँति उसका पिता भी स्वतन्त्र विचारवाले व्यक्ति थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि वह उद्देश्य भिन्न-भिन्न को छोड़कर निश्च



मिर प्रतिक्रिया आई—वह भयङ्कर प्रतिक्रिया जो उनके पारस्परिक प्रतिक्रिया को पूर्णतया रग हीन कर देने पर जुली हुई थी। विभेद उठ खड़े हुए। आये दिन मगड़े होने लगे। नृतन दृष्टि-कोण से वे एक दूसरे को देखने लगे। दोनों की बुराइयाँ दोनों को अतिरञ्जित होकर दिखाई देने लगीं। उनमें नियाम करनेवाले प्रमी दर गये, और आलाचक उठ खड़े हुए और एक-दूसरे के मिर पर यथार्थ तथा कल्पित दोष मढ़ने लगे। ऐसा हा गया माना ठाना में क्वचित्-मान भी सामान्य न था, मानो कुदित कुभाग्य ने दोनों को जबरदस्ती एक-दूसरे के गले मढ़ दिया।

प्रेम अपने शैशवकाल में, सब कुछ दे देना और पाना चाहता है। इस सम्पूर्ण समर्पण के मध्य के स्वर्ण मार्ग से वह मजथा अपरिचित होता है। टोकरें खाने, प्रीत होकर जब वह अधिक देने और कम या कुछ न पाने की कामना रखने के औचित्य को समझ लेता है, तभी वह प्रोत्सवी, पावा तथा निष्फलक बन पाता है। परिवर्तन-काल के कटकाकीर्ण पथ पर अज्ञात रूप से चलते हुए आशा और रमेश पहली अवस्था से दूसरी अवस्था की ओर धीरे धीरे बढ़ रहे थे—उत्त अवस्था की ओर जो उन्हें जीवन तथा मसार को उनके वास्तविक रूप में देखने और समझने की क्षमता प्रदान करने की थी। तब इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि वे विरल थे, अशान्त थे, अन्धकार में भटक रहे थे।

( २ )

आशा की मोटर रीजेंट थियेटर के सामने पहुँचकर रुकी। पहले शो के शुरू होने में अभी बहुत देर थी। कार से उतरकर वह परामदे में पहुँची। इतमीनान से इधर उधर धूमते हुए दो-चार थियेटर के कम-चारियाँ के अतिरिक्त वहाँ और काम न था। रेस्तराँ के दरवाजे खुले थे और अन्दर एक मेज के सामने बैठा हुआ एक गारा सेठिन चाय पी रहा था। गार्ड के समीप जाकर बंध उस पर लगे हुए पाटो देखने लगी।



उन विवाह में 'डिप्टि गारलैंड' के आठ मासिक दरय अर्द्धित थे, किन्तु उन्हें दत्तने में उसका मा न लगा।

तब वह दूसरे बरामदे में चली गई और विवाह में डूरी हुई थीं धीरे-धीरे टहना लगी। अन्तेन का विफल भाग उसका हृदय में व्याप्त था। मलिनता में भी उसे एका जान पड़ता, जैसे रंग रिपट्टि रिपट्टि में उसका काद न था। ग्लेश क्या उस अध नहीं चाहता ! मिलान नहीं चाहता, यह तो स्पष्ट है। उसने प्रेम में यह उभंगता, वह रिपट्टिता वहाँ है जा पहले थी और तब यह पण्ड कगती था। उतप पाम पहुँचा पर प्रथ तो उसे एका जान पड़ता था, माता वह निजी रिमा-रुणाति पत्रत के समान है। उसका छुपने से छुपनी इच्छा पहले उसके लिए भाव्य होती थी, किन्तु अब तो उसकी निरा इच्छा की उसे जरा भी परवा नहीं। अगर वह आता चाहता तो क्या यादी देर के लिए लिगाइ बन्द करके वहाँ वहाँ आ सकता था ! निराने की मन मिथि ! महत्त वदानायाज्ञा ! लिगने का जिने अन्व्यात्त हो, जो नित्य लिपता है, वह जन चाहे कलम उठाकर लिग सकता है। यह आता नहीं चाहता था, इगलिष एक वदाना पश कर दिया। प्यार जन दिल से उठ गया तब अबदेनना के सिगा वाई क्या दे सकता है ! एसा परि-बर्तन उसमें कैसे हो गया ! उसने तो कोई अपराध नहीं किया। वह तो उसे अब भी उतगा ही चाहती है तितना पहले चाहती थी। फिर पग-पग वह उसका निरन्धर क्या करता है ! क्या वह किसी दूसरी स्त्री को चाहने लगा है ! नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। उसके जान में तो उसका वाई स्त्री भिन न थी। क्या उसने कभी सन्चे दिल से उस प्यार नहीं किया ! कौन जाने !

सदसा उसका देला, दा सजे भजे युक्क उस आर सड़े हुए उसे धूर रहे थे। वे कौन हैं ! वह तो उई नहीं जानती। फिर वे उसे क्या धूर रहे हैं ! पुरुष स्त्रियों का क्या धूरते हैं ! 'स्वर्णों धूरी जाना पण्ड

करती है', रमेश ने एक बार मजाक म कहा था, 'इसीलिए मर्द उन्हें घूरते हैं।' स्त्री-जाति के प्रति ये कमें अपमानजनक वाक्य हैं और मर्दों की बुग आदत का केंमी झुंठी सफाई है। उस समय वह हँस पड़ी थी, लेकिन आज तो उस हँसी नहीं आता। कम से कम वह तो घूरी जाना परन्द नहीं करती। फिर ये असभ्य युवक उने क्यों घूर रहे हैं? नदारित् व भी अपनी स्त्रियाँ से घृणा करते हैं। वह पुरुष जो अपनी स्त्री से प्रेम करता है, शायद किसी दूसरी स्त्री की ओर देरना पसन्द न करेगा। क्या यह सत्य है? कदाचित् है, कदारित् नहीं। मर्द कितने स्वार्थी हान हैं, कितने बरपा! लीककर वह अपनी नार के समीप गइ और उममें बैठ गइ।

"बेनी! मरे लिए टिकट खरीद लाओ।" पाँच रुपये का एक नोट उसने शोफन की ओर बढ़ा दिया।

"बहुत अच्छा, हुआ।" टोट लेकर वह चला गया।

ये लाग आखिर क्या रोज शुरू करेंगे? तनीअत कितनी ऊन रही है! जल्दी आ जाना कितना बुरा हुआ। यह भी रमेश के कारण। अगर वह आने से इनकार न करता तो वह इतनी जल्दी क्यों आती? वह कितना समझदार है! वह जो कुछ कहता है तोलकर कहता है, जो कुछ करता है तोलकर करता है! चाट री उसकी बुद्धिमानी!

बेनी वापस आया, और टिकट और मका रुपये रगमिनी को दे दिये। पट्टी घड़ी बजी। जाकर अपनी सीट पर बैठ जाना चाहिये? लेकिन भौड़ तो ज्यादा नहीं दिगाद देती। नहीं, कोई जल्दी नहीं है। अभी से जाकर बैठना लोगों को मि घूरने का मौका देना होगा। काफी घूर नार ही चुरी, कम से कम आन के लिए! आखिरी घटी बजने का इन्तजार करना ही मुनासिब है।

अन्त में नर आखिरी घटी बजी तर वह माटर से उतरा और अबल दजे की ओर ब।। मीड ज्यादा नहीं थी। गेट-कीपर को नि

देकर वह आदर घुसी। एक का छाड़कर उस रनियॉ घुम्न चुकी थीं।  
अच्छा! अब भी खेल शुरू नहीं हुआ। अपना लान्ड है य लाग!

×

×

×

सात राफर ३७ मिनट हो चुके थे जब रमेश ने अपने लंग का  
अन्तिम शरू लिया। लेम्ब दाहराफर, हस्ताफर कर, अच्छा-खा शाफर  
लगाफर, सन्तोष फी सॉस लफर, मुम्नराफर, उसो सिगरे जलाया।  
उत ऐसा जान पड़ता था, माना उम्ने गन्ना पन्ना माग हो। काफ्रेस  
वादियों फं रॉसिल प्रवश के श्रौचत्व क सम्प्रध म उसो अनोखी  
गॉं आगवे ढग से रही थीं। अपरिवतगवादी काफ्रेस गं हाग पन्फर  
जल उम्नेगे। पैसा मज्जा रहेगा!

महारा आशा की छाया-भूति उसकी आँखों के सामने आ  
उपरिधत हु। 'अच्छी बात है, न चलो!' उसने ये शब्द  
उसके कानों में गूँज उठे। उसके स्वर म भयकर नाराजगी  
थी, प्रतिफर की विरड डग्रा थी। किन्तु क्या उसका रतना  
रूठ पाता उचित था? क्या यह प्रत्येक पति का अनियाय कस्तय है  
कि उसकी पत्नी जय कमी और जहाँ कहाँ जाय, वह उसने साथ जाय?  
यह कैसी अनुचित माँग है! अगर यह उसे पहले ही से पता देती ता  
शायद गं उसके साथ जा मजता। किन्तु केवल उम्ने गुश करने के  
लिए उम्ने समय लिगना गद कर देना उसने निण असम्भव था। यह  
बान न थी कि उसे मनोरजन की आवश्यकता ग थी। थी, गदत थी।  
किन्तु केवल मारजन क लिए निछी आश्यकताय का स्थगित कर  
देना उम्नेके स्वभाव के विरुद्ध है। ऐसी परिस्थिति में यह लोपी कैसे  
टहराया जा मजता है? अगर बमनराय रूठने में उसे मना आता  
है ता यह शौक से रूठे। आजकल गत-यात पर उन दोर्ता के बीच  
मतभेद क्या उठ पड़े हाने हैं? किछी विषय म ये सदमत क्या नहीं हो  
पाने? अब भी वह उनम उसी तरह प्रम करता है, जैसे पहले करता

था। उसने उसे पूरी स्वतंत्रता दे रखी है। उसकी किसी गाँव में वह दरखल नहीं देता। वह छाटी-छोटा सेवार्य भी तो उससे नहीं लेता, जो श्रम्य पनि गपनी पत्रिया से लते हैं। अपना देर रख स्वयं कर लेने की श्रादत उसने बाल्यकाल में ही डाल ली थी, और उसकी यह श्रादत अभी तक जैसी की तैसी बनी हुई है। वह सदैव प्रमत्त रहने की चेष्टा करता है। कष्ट हानं का कारण मिलने पर भी वह कष्ट न हाने का प्रयत्न करता है। फिर भी आशा उसमें सुशुभ नही रहती। क्या वह चाहती है कि वह उसने सेवक की भाँति व्यवहार करे? एक स्वतंत्र प्रकृति का व्यक्ति ऐसा व्यवहार कदापि नही कर सकता। नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। उसका ख्याल है कि परिस्थिति ने अनुकूल अपने का बना लेने की उसमें इतना है। किंतु वह उसका भ्रम-मात्र है। वह सुशिक्षिता है, किंतु उसे कभी समझ नहीं सकी, उसके अनु रूप अपने का बना नहीं करती। स्त्री अपने पति में बहुत अधिक माँगती है—उतना माँगता है जितना वह दे नहीं सकता। अपनी इस अनुचित माँग की पूर्ति के निमित्त, स्वेच्छान्धारिता तथा ज़िद के अस्त्र रोकर, वह भयकर युद्ध करती है, और उसका पति जब अपने पुरुषत्व की सहायता लेकर अपने अधिकारों की सौर्यमना मित्र कर लेता है, तभी वह अनियान का सम्मुख नतमस्तक हाने के औचित्य का स्वीकार करती है। यह बात कितनी रोदजनक है, किंतु कितनी सत्य है। आशा इस नियम का अन्वय नहीं है। क्या उसे भी उसके विरुद्ध वही कारवाही करनी पड़ेगी, जो श्रम्य पतियों ने अपनी स्त्रियाँ के विरुद्ध की है? ज़रूर करनी पड़ेगी। पर वह पशु-खल से काम न होगा। उसका-सा सम्य व्यक्ति पशु-खल से काम लगा पसन्द नहीं कर सकता। वह बार-बार तो शायद उसने शुरू भी कर दी है। हाँ, शायद कर दी है।

उठकर वह कमर से बाहर निकला। थोड़ी देर के बाद वह घूमने चला गया। सट्ट दस बजे वह वापस आया। एक भवन से पृच्छने पर

उसे बात हुआ कि आशा विदेहर गलोट अरु है, उमरो गाता नहीं  
गाया है और वह अरु शरत्तमार में है। उा रोड आरुच्य नहीं  
हुया। या ता वह जानता ही था कि उमसे इमने रिताया अरुद्वार  
का। ता आशा करना नहीं है। उम मनो थ विचार म वह शपता  
गर् की था रता। मिनु क्या आशागी ता वह उस मता वादमा  
अवम्भर।

शयनागार का दरवाजा मिला हुआ था, लेकिन उसकी निचिनी  
नहीं चला थी। धार से दरवाजा मालकर उन्ही कमरे म प्रवेश किया।  
एक जान अरु हुण आगत अरुता अरुतर पर लगी दू थी और उमनी  
अरु र चन्द था। वह निस्तर के मनीस पहुँचा।

“आशा !”

उमन का उत्तर नहीं दिया। तब विलग पर बैठकर उमन धीरे  
से उस सिाया।

“तुम्हें तग भत करा।”

“उठा मिय।”

“क्यों उठें ?”

“मोने ता बात अमा नहीं हुआ है और उमन भावन भी नहीं  
किया।”

“तुम्हें भूख नहीं है और मैं सा रही हूँ।”

“नहीं, उम जाग रही है और मन म तुम्हें रुच रही है। तुम्हें  
बना अरुभस है।”

“अकालस करन की तुम्हें क्या जरूरत है ? तुमन कौन-सी गलती  
की है ? तुम ता रमो काइ जानती नहीं करते !”

“न जाने क्या आज-कल तुम मुझे सारफने की काशिश नहीं  
करता ?”

“मं तुम्हें खूब समझती हूँ, उमने अधिक समझती हूँ। मेरी  
हृदयाया ही अरुदलना करने म तुम्हें बडा मजा आता है। तुम्हारे  
अरुदर न मसखरपन है, यही सार फजाद की गद है।”

“इस प्रशंसा के लिये धन्यवाद ! किन्तु मैं नहीं जानता कि इस प्रशंसा के योग्य हूँ या नहीं !”

“तुम भगवतरे ही और इससे तुम इनकार नहीं कर सकते !”

“खैर, यही सही। लेकिन लाग कहते हैं कि मसखरा किसीना नुकसान नहीं पहुँचाता।”

“यह मैं नहीं मानती।”

“कम से कम यह धृष्टता या पाप तो नहीं होता।”

“म उससे धृष्टता नहीं करती। हाँ, उसे नापसन्द जरूर करती हूँ।”

“क्या यह वाञ्छनीय नहीं है कि यदि अपनी ग्री की उचित इच्छाओं की अनइलना न कर, लेकिन तुम्हें तो अगर किसी बात से मतलब है तो वह है लिखना-पढ़ना। कम से कम मुझमें तो तुम फोड़ मतलब रखना ही नहीं चाहते।”

“यह ऐसा दोष है जिसे मैं कभी स्वीकार नहीं कर सकता। आज भी मैं तुम्हें उतना ही चाहता हूँ, जितना पहले चाहता था। तुम्हारी उचित इच्छाओं से सदा मानने का प्रयत्न करता हूँ, यदि मानना असम्भव नहीं होता। आत्म विकास की आवश्यकता मुझे लिखने के लिए प्रेरित करती है, और लिखना मेरे लिए उतना ही आवश्यक है जितना किसी दूसरे का कोई दूसरा काम करना। जब मैं लिखता रहता हूँ तब कोई दूसरा काम करना असम्भव होता है। इसलिये अगर आज शाम का मैं तुम्हारी बात नहीं मान सका, तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।”

“आज का ही बात नहीं है। बीस बार तुम ऐसा कर चुके हो। नाफ-बात तो यह है, निराशा के अतिरिक्त मैं तुम से कुछ नहीं पा सकी।”

“निराशा की बात करती हो तो मुझे भी कहना पडगा कि तुम्हारे सम्बन्ध में मगर भी यही विचार है। फिर भी मैं तुम्हें प्यार करता हूँ— तुम्हारे गुण-अंगुणा-मरित तुम्हें प्यार करता हूँ।”

“य तुम्हारे कार्य तुम्हारे शब्दों का समर्पण नहीं करत, तब मैं यह कैसे मान लूँ !”

“तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ, आशा ! हम यन्त्रे नहीं हैं, हम समझदार हैं, जाना हैं। हमारा यह फर्क है कि एक-दूसरे के शक्ति का गुण का समर्थन और अपने मतभेदों का दूर करें।”

“तुम्हारे साथ निगाह करके मैं तो मारी भूत का। अगर किसी मामूली भाई आदमी से भा शारी करती, तो शायद आज स आने का सुभी होती !”

“ये ऐसे शब्द हैं जिन्हें मैं इतना बुरा नहीं कर सकता। उचित अनुचित का विचार तुम्हें तब भी नहीं रह गया है। ऐसे अपमानजनक शब्द सुनने के बाद शायद कोई स्वाभिमानि पति अपनी स्त्री को काइ सम्भय रखता पसन्द न करेगा। तुम अपने का क्या समझती हो—परी, राना या क्या !”

“चाहे मैं सखार की सखन खराब स्त्री ही क्या न होऊँ, लेकिन तुम्हारी धीम सड़ने के लिये अब मैं तैयार नहीं हूँ !”

तीव्र वेग से उमड़ते हुए माथ का बश में रखता असम्भव जानकर रमेश उठ कर तेजी से कमरे के बाहर निकल गया।

वाचनालय में जाकर वह एक आराम कुर्सी पर लोट गया। पीछे यहाँ तक पहुँच गई। मामला इतना निगड़ गया। कोई व्यक्ति ऐसी स्त्री से कैसे सम्बन्ध बनाये रख सकता है जो इतनी शान बधारी है, जिसे औचित्य-औचित्य का लेश-मात्र भी विचार नहीं रह गया है समझो-सुझाओ का भी जिस पर कोई असर नहीं पड़ता। विलग होने का समय शायद आ गया है। जो लाग साथ-साथ शान्ति के साथ नहीं रह सकते उन्हें अलग हो जाना ही उचित है। हे इतर ! अब क्या करना चाहिये।

दूसरे दिन प्रातः काल आशा को एक पत्र मिला। यह इस प्रकार था—

“प्यारी आशा,

यह बात अत्यन्त खेदजनक है कि इधर हम दाना का एक-दूसरे की सगति में मुश्किल प्राप्त नहीं हो रहा है। वैवाहिक जीवन की सार्थकता सुख पर ही आधारित है। इसलिये उचित यही है कि जब कभी पति या पत्नी या दोनों को उनका वैवाहिक जीवन से सुख प्राप्त न हो, तो उनका सम्बन्ध विच्छेद हो जाय। वर्तमान क़ानून के अनुसार हम लोगों का सम्बन्ध विच्छेद होगा असम्भव है। किन्तु अपनी समस्या हल करने के लिये हमारे सामने एक मार्ग है। अनेक आलोचिता क़ानून विद्यमान हैं और उनके अनुसार कार्य करने के लिये लोग स्वतंत्र हैं। बिना शर्त शर्तों के गुप्त रूप से हम अपना सम्बन्ध तोड़ सकते हैं और एक-दूसरे का एक-दूसरे के प्रति अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त करके स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने का अवसर दे सकते हैं। इस सम्बन्ध में तुम्हारे विचार क्या हैं? कृपया इस पर गम्भीरता पूर्वक विचार करा। मैं चाहता हूँ कि आगे तीसरे पहर तुम मेरे साथ इस प्रस्ताव पर विचार करा। इस समय मैं जाहर जा रहा हूँ और एक नजे वापस आऊँगा। स्वतंत्र रूप से गम्भीरतापूर्वक विचार करने के लिये इतना समय शायद तुम्हारे लिये काफी होगा।

तुम्हारा,

रमेश ”

आशा क्रोध से काँपने लगी। पत्र पाठकर उसने एक ओर फेंक दिया। “तब इस हद तक पहुँच गई! जले पर नमन! वह अपने का क्या सम्झता है? उसके साथ सम्बन्ध जाड़े रहने के लिये क्या वह मर रही है! क्या उसका आत्म सम्मान का अभाव है? वह किसीकी धोँस सहनवाली स्त्री नहीं है। उसकी कृपा प्राप्त करने के लिये यह अनुनय प्रिय न करेगी—कदापि न करेगी। अपने पिता के घर जाकर वह शेष जीवन शान्ति के साथ व्यतीत कर सकती है। इस कलहपूर्ण वातावरण में क्या रक्ता है!



और रमेश ! वह भी मुखी न था। सुविषसित पुष्प की भांति, जो घर सदा तिलगिलाता रहता था, सहृण आरुर्षखहीन हा गया था। पहले ही की तरह अब भी वह साफ-सुथरा रहता था, सिन्धु हर समय उसम अजीब सूनापन दिग्गई देता था। उसके हृदय म भी विचित्र सूनापन आ गया था। काम में भी उसका मन न लगता। लिखने की मन स्थिति किसी समय उत्पन्न न हाता। वह ज्वरदस्ता निरता, सिन्धु सन्तोपजनक दग से कुछ न लिख पाता। उसके आश्चय का ठिकाना न था। आशा से उसकी लेखन क्रिया का तो स्पन्दत कुछ सम्बन्ध न था। उसका इस काम म ता वह बाधा ही उपस्थित करती थी। इस सम्बन्ध में उसका निरोध की भावना क ही कारण तो उन दोनों का सम्बन्ध-विच्छेद हुआ था। उसकी अनुपस्थिता से लेखन शक्ति को प्रेरणा मिलनी चाहिय थी। फिर यह उलगी बात क्या हुई !

उसका क्या हाल है ! उसकी दिन-चर्या क्या है ! सिन्धु उसका लिये चिन्तित होने की उसे क्या आवश्यकता है ! यह तो अब उसे नहीं चाहती। 'दुग्धार साथ निवाह करके मने भारी भूल की !'— उसका इन शब्दों का और क्या मतलब है ! विचित्र है स्त्री-चरित्र ! क्या अब भी वह उससे प्रेम करता है ! नहीं करता। शायद करता है। उसे भूल जाने का प्रबल प्रयत्न करना चाहिये। भूल जाना सम्भव है ! शायद है। शायद नहीं है। तब क्या करना चाहिये ! समझौता ! नहीं, यह अतम्भय है। यह उसके जानन से बाहर जा चुकी है। उसकी इच्छा क विकट वह कसे उस पुन प्रवेश का निमन्त्रण द सकता है ! कैसे निपम परिस्थिति है !

दिन का तीसरा पहर था। रमेश समालोचनार्थ आइ हुा एक मुस्तक पत्रन म प्रयत्न कर रहा था। सहसा उसका इंसुर निनादचन्द्र ने कमर म प्रवेश किया। रमेश सम्भागाथ उठ खडा हुआ। प्रणाम

आशीर्वाद के बाद दोनों बैठ गये। विनोदचन्द्र ने मुस्कराकर कहा—  
“रमेश ! तुमसे एक सीधा-सा सवाल करना चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि ठीक ठीक जवाब दोगे।”

“मैंने कभी आपसे कोई बात छिपाने की कोशिश नहीं की।”

“मैं यह जानता हूँ और इस बात के लिए तुमसे बहुत खुश हूँ। इस समय जो कुछ जानना चाहता हूँ वह यह है—क्या आशा और तुम्हारे बीच झगडा हो गया है ?”

“क्या मैं यह जान सकता हूँ कि आप यह क्या पूछ रहे हैं ?”

“मेरा हृदय पिता का हृदय है और मैं देखनेवाली आँखें रखता हूँ। आशा ने तो मुझसे कुछ नहीं कहा, लेकिन मेरा खयाल है कि तुम दोनों में झरूर झगडा हो गया है। उस दिन जब वह मेरे घर देर असनाब लेकर पहुँची तभी मुझे सदेह हुआ था। उसने मुझे बतलाया था कि वह स्थान-परिवर्तन के निचार से आई है, किन्तु मुझे विश्वास नहीं हुआ था। मैंने और सवाल किये, लेकिन वह बात टालने की कोशिश करती रही। उसका चेहरा उतरा हुआ था और वह थकी हुई सी मालूम होता थी। कई दिन बीत गये, लेकिन उसकी तन्दुरुस्ती नहीं सुधरी। तब मैंने अपने डाक्टर को बुला भेजा। उसकी परीक्षा करने के बाद डाक्टर ने मुझे बतलाया कि किसी मानसिक आघात के कारण उसे कोई स्नायु रोग हो गया है। तब से उसका इलाज हो रहा है, लेकिन कोई फायदा दिखाई नहीं देता। उसका चेहरा मुरझाया रहता है और वह बहुत दुबली हो गई है। दिन-रात वह अपने में ही सोई रहती है और किसी मित्र से मिलना-जुलना भी उसे पसन्द नहीं है। किसी मनोरंजन के घट पास नहीं पटकती। इतने दिनों से वह मेरे यहाँ मौजूद है और तुम एक बार भी नहीं आये। तुम्हीं बतलाओ, इन बातों से क्या मालूम होता है ?”

तब रमेश ने उपर्युक्त दुःखद घटनायें बयान कर दीं। उसने कोई बात नहीं छिपाई। विनोदचन्द्र ठहाकर हँस पडे।

“राय ! अब तक मैं तुम्हें गर्भार स्वभा, का गति समझता आया हूँ, लेकिन आज यह जानकर मुझे बहर खुरी हुई कि तुम बचों की तरह भी व्यवहार कर सकते हो। क्या तुम यह समझते हो कि आशा के बिना सुखी रह सकते हो ? अगर तुम्हारा घर खाली है, तो तुम मारी भ्रम में हो। जब तुम्हारा शादी के मामले में मैंने आगे की रजामरी दी थी, तब उही समय मैंने तुम्हें खूब ताल लिया था। वेणु ! गिरियों के मागल में पुरुषों को बड़ी क्षामारी से काम लेना पड़ता है। अपनी पत्नियों पर अधिकार लगाने रखा के लिए हमें कभी मुझना पड़ता है, कभी तन जाना पड़ता है। किन्तु प्रत्येक दशा में उतकी गान-रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य होता है। हममें इतनी ही आशा करो का उन्हें पूरा अधिकार है।”

“मैं यह मानता हूँ, पापा कि मुझमें बड़ी गतती हुई।”

“अभी बहुत दानि नहीं हुई है। अब तुम एक काम करो। प्रौढ मर साथ चला और उससे समझीता कर ला।”

“लेकिन, पापा, क्या यह सचमुच उचित है कि ?”

“आमा-थीऊ मत करो, बेटा ! मैं तुम्हारा शुभचिन्तक हूँ और तुमसे अधिक अनुभवी हूँ। जा कहता हूँ, करो।”

“बहुत अच्छा, पापा !”

तब दोनों उठकर चले गये।

आप घण्टे में रमेश ने आशा के कमर में प्रवेश किया। एक बार उधकी आर देर कर आशा ने बिर भुजा लिया। रमेश भपटकर उसने समीर पहुँचा, उसने बगल में बैठ गया और उसे भुजाओं में कस लिया।

“आशा ! प्यारी आशा ! मैं जानता हूँ कि मैंने तुम्हारे साथ जान कर का-सा बचाव किया है। मुझे क्षमा कर दो मुझे क्षमा।”

“मुझसे भी बड़ी भूल हुई।” आशा ने अवरुद्ध कंठ से कहा।  
 “मेरा अपराध भी कम नहीं है। स्वार्थ ने, मिथ्याभिमान ने मुझे भूर्त्त  
 बना दिया था, अधी बना दिया था। मुझे समझना चाहिए था कि  
 अपने प्रति भी तुम्हारी कुछ जिम्मेदारियाँ हैं।”

“तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। जाना के अन्तिम  
 दिवस तक, चिर काल तक मैं तुम्हें प्यार करता रहूँगा। तुम्हारी इच्छा  
 के विरुद्ध अब कभी कोई कार्य न करूँगा।”

“और मैं अब कभी तुम्हारे काम में विघ्न न डालूँगी और तुम्हारी  
 आशाकारिणी स्त्री बनी रहने का सदा प्रयत्न करूँगी।”

उस कमरे के अधःखुले दरवाजे के समीप विनोदचन्द्र दबे पाँव आये  
 और एक बार अदर झाँककर हट गये। ‘अन्त ठीक तो सब ठीक!’—  
 उन्होंने मुस्कराकर धीरे से कहा। उस समय उनका हृदय आत्मगौरव  
 तथा अगाध सताप से भर गया था।

## माता का हृदय

मन्यास का समय था। मौन तथा यौवन के उस हाट में आलस्य व्याप्त था। उभर में एक गाड़ी आकर एक भवन के सामने रुकी। पुरत कोचबक्स से उतरकर, काचवा १ गाड़ी का दरवाजा खोल दिया। भद्र वग की एक अर्ध टन की महिला नाचे उठी।

“यही है उसका घर !”

“जी हाँ, सरकार !” कोचवान १ उधर दिया—“रखाजा तो बन्द है। रेगिथ, प्रमा खुलवाता हूँ।”

काचवान बढ़कर, घर के बन्द दरवाजे के समीप पहुँचकर रुकल खटखटाने लगा। जवाब नहीं मिला। उसी तिर गटकटाया। तिर जवाब नहीं मिला। कुछ बार गटकटाने के बाद एक व्यक्ति ने दरवाजा खोला। जम्हारी लेकर, वह कोचवान की शोर प्ररनरूक हाट से देखने लगा। भद्र महिला आगे गयी। काचवा अलग हट गया।

“आप क्या चाहती हैं ?”

“दुलारी माइ से मिलना चाहती हूँ।”

“इस वक्त तो बे आराम कर रही हैं।”

“बहुत जरूरी काम है।” पस खालकर, दो मध्य निरालकर उगने उस व्यक्ति की आर बताये।

लजचामी हुई दृष्टि से रूपों की आर देख कर, दांत निरालकर, उसने कहा—“इसरी क्या जरूरत है ! आपका मादिम हूँ।”

‘ले लो।’

रूपये लेकर वह वाला—“उपर तशरीफ ले चनिये। अभी मिलाता हूँ।”

वह आगे उठा। वह पीछे चली। सीढियों पर चढ़कर, दानों एक मुमजित कमरे में पहुँचे। मसनद की ओर इशारा करते उस व्यक्ति ने कहा—“आप तशरीफ़ रतिये। मैं इत्तला करता हूँ।”

“अच्छा।”

वह पैलीन पर बैठ गयी। वह दूसरे कमरे में चला गया।

पन्द्रह मिण्ट के बाद एक युवती ने उस कमरे में प्रवेश किया। साभिनी उसे गोर से देखने लगी। विविध भावा से भरी हुई दृष्टि से दुलारी भी उसकी ओर देखने लगी।

“नमस्ते।” हाथ जोड़कर दुलारी ने कहा।

“नमस्ते।”

सामने बैठकर दुलारी ने कहा—“आप कौन हैं।”

“म रामेश्वरनाथ की माँ हूँ।”

“अच्छा। आप उनकी माँ हैं।”

“हाँ।”

“आपसे मिलकर मुझे बड़ी खुशी हुई।”

• “मुझे खबर मिली है कि रामेश्वर यहाँ आता है।”

“जी हाँ। गाना सुनने की गरज से रामेश्वर माँ अबसर यहाँ आ जाते हैं।”

“रामेश्वर मेरा एकलौता बेटा है। उसके सिवाय मेरे और जोड़ नहीं है। उसे ही देखकर मैं जीती हूँ। बड़े लाड़-प्यार से मैंने उसे पाला है। जब भर शाराम स रहने के लिये उसके पिता काफी छोड़ गये हैं। इशर की दया से किसी बात की कमी नहीं है। कद साल में कह रही हूँ कि शादी कर ले, लेकिन नहीं मानता। आधारा ग्राभी मिल गये हैं। आधरगी में पड़ गया है।”

दुलारी निस्तब्ध रही।

“उसे सुधारने की मैंने बहुत पाशिया की, लेकिन मेरी एक नहीं चली।”

“आप उनसे भी हैं। आपका कहना मानना या उनका बनना है।”

“यह जो ठाकुर है, प्रिय! लेकिन अब यह समझना पड़ेगा, जब पुत्र अपना माता की नजर देखकर जाता था। अब नया समझना है, क्यों क्यों है। अब तो हर आदमी अपने मन की चोरी के नियम आकाश है। रामेश्वर से म नह मय न। चाहेती, जो पिछले जन्मों की मातायें अपने पुत्रों से चाहती थीं। वर, म उमे सुखी दुःखना चाहती हैं। रामेश्वर सम्मता है कि यह जिन हालात में है, उमन यह सुखी है। म कहती हैं कि यह उमना भ्रम है। मुन की समझ म यह इधर उधर भ्रमका विरता है। लोनेन मुन क्या नाम देकर स्वयंदा या दूसरी के नामों द्वारा फैलाने से मिन सफा है? म तो समझती हैं कि इस तरह मुन रमा कितना प्राप्त नहीं हो सकता। सधा मुन तो आदमा के अन्दर दिया है। वह जन चाहे, उसे पा सकता है।”

“मुन है क्या?”

“मुन, मर विचार से यह मानसिक अरथा है, जिनमें आत्मा और मन का शान्ति प्राप्त हो।”

“और शरीर?”

“आत्मा और मन जब सुखी है, तो शरीर भी सुखी है।”

दुलारी गहरे विचारों में डूब गयी। उसकी दशा उस पथिक की सी हो गयी, जिस सहना नह बताया गया हो कि जिस मांग पर यह चनता आता है, वह उसे उमने निर्दिष्ट म्याग की आर नहीं ले जा रहा है। सधा मुन! आत्मा और मन की शान्ति! ये क्या पड़े लिये हैं?

“बालो बटी, क्या म शलत फन्ती हूँ?”

“आपकी बातें तो मैं पूरी तरह नह समझ पायी हूँ, लेकिन मुझे ऐसा जान पड़ता है कि आपके विचार बिलकुल सत्य हैं।”

“तुम समझना चाहती हो, लेकिन रामेश्वर नहीं समझना चाहता । तुमने सत्य की एक मलक देगरी, और उसे पूरी तरह देगना चाहती हो । रामेश्वर उस देगता है, और आरों फेर लेता है ।”

“ऐसा क्या है, माताजी ?”

“इसका कारण मेरा दुभाग है, मरी उमजारी है । दुनिया म जो चाही, वह नहा हाता, जो उ चाहा, वह हाकर रहता है । यही साधारण नियम है । इस नियम का पलट देना फिरला का ही काम है । इसके लिये असाधारण समय, त्याग और इच्छा शक्ति की आवश्यकता है । चाहना का मूल्य हर व्यक्ति का चुकाना पड़ता है । मेरा लड़का मेरे हाथ म इसलिये नहीं है कि मैं उसे बेहद प्यार करती हूँ ।”

“तब आप ऐसा क्या करती हैं ?”

“बेटी, मेरे इस हाथ मास के शरीर में एक माता का हृदय जो । माता का हृदय पुन क पीछे पागल की तरह घूमता फिरता है । उसे राक सको की शक्ति मुक्त म नहीं है ।”

पहेलिया पर पहेलिया ! दुलारी की उलझन बढ़ती ही गयी ।

“दुलारी ! मरी मदद करागी ?”

“आपकी मदद ! मैं कैसे आपकी मदद कर सजती हूँ ?”

“रामेश्वर का सुधारकर ।”

“सुधारकर ! आप भूल गया कि आप एक वेश्या से बालें कर रही हैं ?”

“वेश्या ! बटी, तुम वेश्या ही नहा, एक सहृदय नारी भी हा । और एक दुखी नारी जन एक दयावती नारी के सामने आंचल पसा रती है, तो वह मुन नहीं माहती ।”

“मुन माहने की बात नहीं है, माताजी । मेरा तो कहना यह है कि जिसो कभी सुधार के माग पर कदम नहीं रगा, वह किसी दूसरे को कैसे सुधार सजता है ।”



“इच्छा काय की जननी है ! इच्छा जब प्रयास का हाथ पकड़ कर चलती है, तो ऊँचे से ऊँचे परत के शिखर पर पहुँच सकती है, आकाश में उड़कर तारा को छू सकती है, इशर में लीला हा सकती है ।”

“आप ही की तरह मैं भी तो एक दुर्लभ नारी हूँ । इतनी शानमयी होकर जब आप अपने को कमतर समझती हैं, तो मैं केन अपने को उलझती मान लूँ ?”

“बेटी ! मंगल नारीत्व कमजोर नहीं है, मातृत्व कमजोर है । नारी को अज्ञाना समझनेवाले भयङ्कर भ्रम में हैं । नारी पुरुष की जननी है । प्रकृत में भी तो नारी ही कहते हैं । अखिल ब्रह्माण्ड की रचना करनेवाली महाशक्ति भी तो नारी ही थी । नारी महाशक्ति-सम्पन्ना है । पुरुषों ने अज्ञाना कहकर उससे अपने को अज्ञाना समझने के लिये राध्य कर दिया । पुरुषों के हाथ का गिलौना बनकर वह अपने को पहिचान नहीं सकी ।”

“तब क्या उसे पुरुषों से धृणा करनी चाहिये ?”

“नहीं । पुरुष के बिना उसका काम नहा चल सकता । उसे अपने को पहिचानना चाहिये, और पुरुष के हाथ का गिलौना बनने से इनकार कर देना चाहिये ।”

कई क्षणों तक निस्तब्धता रही । नवीन पावन विचारों में खोयी हुई दुलारी निश्चल बैठी रही । तो जागन का एक पैसा पदलू भी है, चिसकी आँसु उसने कभी दृष्टि नहीं डाली थी, जा आरुपक है, मय है, निर्विकार है ।

“बोलो, दुलारी, क्या कहती हो ?”

“आप जा कुछ कहें, करन की तैयार हूँ ।”

“धन्यवाद, बेटी ! मैं तुमसे और कुछ नहीं चाहती, सिर्फ इतना चाहती हूँ कि रामश्वर अब तुम्हारे पास आये ।”

पटफारा और इस पर भी अगर वह अपनी चाल सुधारने को राजी न हो, तो साफ कह दो कि तुम उससे मिलना नहीं चाहती।”

“मृत अच्छा।”

“मैं जानती हूँ कि तुम्हें इसके लिए बड़ा त्याग करना पड़ेगा। किन्तु त्याग ही वह अग्नि-परीक्षा है, जिसमें उत्तीर्ण होने पर हम नारियाँ का नारीत्व सरं सारे की भाँति चमक उठता है। अतः मैं यहाँ खरकर तुम्हारा समय बचाव न करूँगी।” सावित्री उठ खड़ी हुई।

दुरन्त उठकर, मुस्कराकर, दुलारी ने कहा—“आपका समय भले ही बचाव हो, किन्तु मुझे तो जेभा जान पड़ता है कि यहाँ आकर आपने मेरा बड़ा उपकार किया है।”

“मैं फिर आऊँगी, बेटी।” दुलारी को हृदय से लगाकर, उसने सिर पर हाथ फेरकर, पीठ पर थपकियाँ देकर, वह चली गई।

विचित्र अनुभूतियों के रस में डूबी हुई दुलारी भूर्तिवत् खड़ी रह गई।

×

×

×

अपने शयनागार में जाकर, पलंग पर लेटकर, दुलारी छत की ओर तानने लगी। सावित्री की बातें सुनकर नवीन विचारा की जो धारा उसके मस्तिष्क में प्रवाहित हो गई थी, उसमें वह बह रही थी। क्या वह वास्तव में सुरी है? मर्द आते हैं, उसकी खुशामद करते हैं, वारिस के पुल बाँधते हैं, धन भेंट करते हैं, और नृत्त हाकर चले जाते हैं। अच्छे से अच्छे रस, अच्छे से अच्छे सारे उसके लिए हाजिर रहते हैं। किन्तु खुशामद की बातें सुनकर, अच्छे नपड़े पहिनकर, अच्छे खाने रानर, क्या वह सुरी है? मर्दों ने इशारे पर क्या उसे फट पुतली की तरह नाचना नहीं पड़ता? डाकी अप्रिय बातें सुनकर, उसे अनिच्छित व्यवहार पाकर क्या उसे रून के घूँट नहीं पी जाने पड़ते? जो कुछ उसके पास है, उससे क्या वह संतुष्ट रहती है? और-और

“अच्छा थागा, न उठो। मुझे क्या करना है ! मुकसान होगा, तो तुम्हारा। मेरा क्या जायगा ?”

“देने दो। जाओ तुम यहाँ से।”

मुँह बनाये हुए, मन ही मा बड़बड़ाती हुई नायिका चली गई। दुलारी फिर अपने मित्रागे म चलनात हा गई।

शाम हो गयी, लेकिन वह जग की त्यो पड़ी रही। एक माराखी आया।

“बाईजी !”

“कहो !”

“सिंठनी आये हैं।”

“कह दो कि मेरा तबीयत अच्छी नहीं है।”

“बहुत अच्छा।” वह चला गया।

मारी भरभरा शरीर है। अनाज स भरे हुए भारी जेरे की तरह ताँद है। दमा नाक म दम क्रिये रहता है। लेकिन ऐयाशी के बिना चीत नहीं ! उसकी बातें सुनकर, भाव भङ्गी देखकर मन घृणा से भर जाता है। केवल ऐसे क लिय, अपना मनाभाव दावकर, ऐसे ध्यक्ति का खुश करना ! वैसे ओछी है यह बात !

मीराखी फिर आया। उसने उसकी आर प्रश्न-सूत्रक दृष्टि से देखा।

“सिंठनी पृछते हैं कि क्या तकलीफ है ! डाक्टर बुलाया जाय ?”

“उनसे कह दो कि मुझे डाक्टर की जरूरत नहीं है। अगर पाररत हागी, तो मं खुद बुवना लूँगी। तशरीफ ले जायें। सारा बाजार पड़ा है, कहीं और प्रहुा जमायें।”

मीराखी चुपचाप चला गया।

वह अथ ब्राह्मक आये और निराश हाकर भापस गये।

दस बजे क करीब फिर एक मीराखी आया।

“रामेश्वर बाबू आये हैं।”



"तरी, तुम्हारा, मय कबू एक-ना लगी है।"

"क्या ?"

"हर जगह ता तुम मिल लगीं गइलीं।"

"म ! तब तुम अइया नहीं पाइते, तुम्हें गारते हो।"

"सन्धे मिल से तुम्ह गइता हूँ।"

"इसका मयून ?"

"कहाँ ता इयो समय तुम्हारे नामो जगता जात हूँ।"

"तरी, तुम्हारा जा लकर मं तुम्हारा इज्जत लता लगीं चाहत।  
एक सल तरीना है।"

"तब उभी मे काम ला।"

"सैवा द।"

"पूरी तरह।"

"तुम मुझ भूल जाओ। समझ ला कि मैं मा गयी।"

"हँ ! हँ ! यह क्या कह रही हो, हुलारी।"

"अबोध का साथ छोड़ दो। इस नरक-कुएरे की तरफ बदन मत उठाओ।"

"यानी महात्मा बन जाऊँ ?"

"महात्मा बनना हर आत्मीय भाग्य में नहीं होता। लेकिन एक शरीर और इज्जतदार आदमी की तरह भी ता रक्ष पा सकता है।"

"जिन बातों से मेरे दिल को खुरी दाही ह उहं झाड़ देना मेसे मुमकिन है ? 'अिन्दगी राना-राने और पुश रहने के लिए है।"

"अिन्दगी नीचे गिरने के लिए नहीं, ऊपर उठने के लिए है। जिसे तुम खुशी समझते हो, वह झूठी खुशी है। वह पंगा जहर है, जिसका जायका मीठा है ! बमतलब तुम हजर उधर भटक रहे हो। क्या तुम्हारी आत्मा शान्त है, मन शान्त है ?"

"आत्मा और मन ! अरे, अब तो तुम मेरी माँ का तरह बातें करने लगी ! अब हो चुका !" तुरन्त लेव से बोल निकालकर, वह काक सालने लगा।

“गदने दो, यद्दुत वाली पी खुके हा ।”

“अब क्या शराब पर भी रोफ लगाओगी ?”

“राक रागानेवाला मैं कौन दाती हूँ ? लेकिन, तुम खुद इम्तहान देने क निप राता हुए हा ।”

“यह ता ठीक है ।” उसने थोतल फिर नेत्र म रत ता ।

पश पी आर तातता हुआ यह कइ क्षणा तक निरन्ध सदा रहा, फिर दरवाजे की आर बढा ।

“रुहँ जा रहे हो ?”

“जहाँ अशाह मियाँ क दिये हुये यह दो पैर ले जायँ ।”

“और इम्तहान ?”

“रहा क्या है तुम्हारा इम्तहान !”

“काशिया ता करोगे ?”

“रुहँगा । लकिन ।”

“लेकिन क्या ?”

“कुछ नहीं । सताम ।”

“खुश रहो !”

बहकहा लगावर यह चला गया ।

×

×

×

सटक पर पहुँचकर, रामेश्वर गम्भीर विचारां में सोया हुआ इधर-उधर टहलने लगा । अब ता घर, गहर एक ही सी बातें सुनने को मिलने लगा । क्या हा गया है दुलारी को ? सनक गयी है न्या ? जरूर सनक गयी है यह ! माँ भी सनक गयी, दुलारी भी सनक गयी । अब कहाँ टिकाना मिलेगा उसे ? नि दगी के मजे छोड़ दो, यह करो, वह करो ! यह सब हो सकेगा उससे ? आह ! रडा कटिन फाम है यह । खेप से जौतल निकालकर, काग प्यालकर, यह वाली नची हुई शराब पी गया । राती एक बार पेंकर, किगस्ट चलाकर व

टहलने लगा। दूसरा श्रद्धा ! नहीं, नहीं। गारे त्रुडे उसके देखे हुए हैं।  
 नदी दूसरी जगह कभी उसकी तवीश्रत नदी जमी। दुलारी का छाड़कर  
 यह किसी दूसरी स्त्री को प्यार नहीं कर सकता। तर ! अजब परे  
 शानी है !

सामने का रास्ता एक पार्क का श्रार जाता था। यह तेनी स  
 श्रामे गता।

पार्क में पहुँचकर वह बेच पर लट गया। 'बिना तुम मुसी  
 समझते हा, यह कूटी मुसा है।' 'क्या तुदारी आत्मा शात है, मन  
 शान्त है ?' श्रानव मुश्रम्म की शारें हैं। उसकी मुसी सधी मुसी नी  
 है, तो सधी सुसी है क्या बला ! ठीक प्ती ही शारें माँ भी रहता  
 रहती है। उसकी गहरी शारें यह कभी समझ नहीं सका। मचमुच क्या  
 दोता साक गयी हैं ! लेनिन इस तरह की शारें कराने श्रानावा  
 ता काइ दूसरी मनक की शार उन दोता में दिगाइ नहीं देती। ता  
 क्या यह स्वयं भ्रम म है ! जानन क बिच शिद्धात क गदार श्रान तक  
 बट बलता श्राया है, क्या वह गलत है ?

बड़ी देर तक वह पड़ा रहा, फिर गटर टहलने लगा। उसका  
 श्रान्दालिता मा निशी तरह शान्त न हुआ। वह फिर चीन का श्रार  
 चला।

एक गली में पहुँचकर उसने एक घर का दरवाजा सटकटाया।

“कीन है !”

“दरवाजा श्रानिये, परिहतता !”

“अच्छा, श्राना हूँ !”

दो मिनट के बाद दरवाजा खुला।

“अगराह ! श्राप हैं ! कदिये !”

“एक मोतल 'हाइट हास' चाहिये !”

“अन इस बत !”

“गोदाम तो यहीं है, दे दीजिये।”

“दुगनी कीमत लगेगी, जनान।”

“ऐसा गजब न कीजिये। मैं तो आपका रोज का ब्राह्मक हूँ।”

“अच्छा, ड्योनी सहा।”

“अच्छा साहन, जो कुछ चाहिये ले लीजिये।”

“अन्दर आइये, अभी देता हूँ।”

अन्दर जानर वह बैठक म रठ गया। पण्डितजी चले गये।

दस मिनट के बाद पण्डितजी बातल लेकर वापस आये। दाम देकर, बोतल बगल में दाबकर, उस घर से निकलकर, वह फिर एक ओर चल पड़ा। कइ गलियाँ और सड़कें पार करने के बाद एक गली में पहुँचकर उसने फिर दरवाजा खटखटाया।

‘जुगुल ! आ जुगुल ! दरवाजा खोला, भाई !’

“आता हूँ, रामेश्वर ! ठहरो !”

एक मिनट में दरवाजा खुला।

“आपने तो खूर इन्तजार कराया, जनान ?”

“भागा चला तो आ रहा हूँ।”

“शामके वक्त आने का वादा किया था, और आये हो इस वक्त ! तुम्हारी बजह से कहीं जा नहीं सका !”

“मुझ बड़ा अफसास है, यार !”

“बगल म क्या है !”

“वही जिसकी तुम्ह प्यास है !”

“ही ही-ही ! आआ, आआ !”

दोनों भीतर गये, दरवाजा मन्द हो गया।

दोनों ऊपर बैठक म पहुँचे। बोतल खुली। दौर चलने लगे।

“अब यह बताओ कि अभी तक कहाँ थ ?”

“एक अजीब मरमसे में पँचा था।”



“बोलो, अम्मा, क्या कहती हो ?”

“त्रिचार कर लूँ, तो मताऊँ ।”

“त्रिचार करने की इसमें कौन-सी बात है ?”

“क्या मताऊँ तुम्हें ? तुम तो !”

तैश में आकर, उठकर वह चला गया ।

×

×

×

दिन भर वह गायब रहा ! दो बने रात के समय उसके दो साथी उसे घर पहुँचा गये । उस समय वह जो म बेहोश था ।

सबेर उसे तेज बुखार चढ़ आया । दुरन्त डाक्टर बुलाया गया । डाक्टर आया, रोगी की परीक्षा की । नुमरा लिखकर उसने सावित्री से कहा—“रोगी का कोढ़ प्रजल मानसिज दु र है । जिस बात में वह खुश होता हो, व आपसे करनी चाहिये ।

“काइ खतरा तो नहीं है ?”

“खतरे का तो अभी काइ बात नहीं है, लेकिन रडी सावधानी रखने की जरूरत है ।” पीस लेकर वह चला गया ।

रह-रहकर रामेश्वर बेहाश हो जाता था । बेहोशी की हालत में आव-वाँय मरता था । ‘दुलारी ! दुलारी !’ चिल्ला उठता था । सावित्री के दु र का पारानार न था ।

दापहर के समय व दुलारी के घर गयी । उस समय उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रनी थीं ।

“क्या बात है, माताजी ?”

“रामेश्वर की त्रीयत मृत सराव है । तुम्हारे नाम की वह रट लगाये हुए है । गल्दी चला, बेटी ।”

“चलिये ।”

पाँच मिनट म व तैयार हो गयी । गाथा बाहर रखी थी । दोनों १५ हुए । गाढ़ा हवा से बातें करने लगी ।

रामेश्वर ने आंगें खोलीं । रोग शय्या के समीप एक कुरसी पर दुलारा बैठी हुई थी । उसकी आर देखकर, किञ्चित् मुस्कराकर, उसने कहा—“आ गया, दुलारी !”

“हाँ ।”

“कैसे आयीं ?”

“माताजी बुलाने गयी थीं । अब तबीयत कैसी है ?”

“अब भ नहाँ चूँगा, दुलारी !”

“कैसा गाते करते हो ! बहुत जल्द अच्छे हो जाओगे ।”

वह निस्तब्ध रहा ।

“दुलारा !”

“हो ।”

“मेरी एक गत मानोगी ?”

“कहो ।”

“तुम जो कुछ कहागी, करूँगा, मेरे पास से अब कहीं न जाता ।”

“अच्छा । ज्यादा गाते न करो, डाक्टर ने मना किया है ।”

रामेश्वर ने आंगें बन्द कर ली ।

थोड़ी देर के बाद दुलारी को डाइग-रूम में ले जाकर, सावित्री ने कहा—“बेटी ! उस दिन तुमसे एक अनुरोध कर चुकी हूँ, आज दूसरा करना चाहती हूँ ?”,

“कहिये । आपका आज्ञा मैं कभी न टालूँगी ।”

“अब तुम यहाँ से कहीं न जाओ ।”

दुलारी निस्तब्ध गयी ।

“मैं चाहता हूँ कि तुम रामेश्वर के साथ शादी कर लो ।”

“लल्लिन, उस दिन तो आपने मुझसे कहा था कि स्त्री का पुरुष या विलीना न बनना चाहिये ।

“और माया भा तो कहा था कि पुण्य के बिना श्री या काम नहीं चल सकता ! फिर तुम्हारी उम्र भी अभी बहुत थानी है ।”

“आपका बड़ी बदनामी हमी ।

“मुझ बदनामी की बात परवाह नहीं है, क्या ! मैं तो रामेश्वर को मुन्नी देगना चाहती हूँ । तुम्हारे जियाय उमे और को- मुझ नहीं दे सकता । और मैं भी एक सुन्दर-सा, अच्छी-सी नहूँ या जाऊँगी !”

तुम्हारे कल बैठकर, तुम्हारी तलाशिनी के पैरों पर मिर रंग दिया । उमरो उम उठकर हृदय पे लगा लिया ।

रामेश्वर का राग उड़ा तेजी ने धरने लगा । दूसरे दिन डाक्टर ने परीक्षा करके ये राद रना— ‘अब आप कल तक चगे हो जायेंगे ।’

दायद्व ने ममय साधिका ने रामेश्वर से कहा— ‘दुलारा राजा हा गयी है, क्या । शादी का इतकाम कर रना हूँ ।’

प्रधान हाकर, मुक्कराकर रामेश्वर बोला— ‘आपिर मेग ही रात रही त, अर्मा ?’

‘तुम्हारा जिद क नामने किसी की क्या चल सकती ह ! हर तन्द, तुम्हारी ता जीत न जीत है ।’

रामेश्वर हँस पना । दुलारी तिर मुक्करा मुक्कराये लगी ।

## भाग्य-चक्र

नौफरी न मिलना इतना दुःख नहीं होता, जितना लगी हुई नौफरी का हूट जाना। उस दिन क साधारण-से भगदड़े के कारण, रड़े धारु की गिरायत पर, रम्पनी के मालिकों की श्रार से जब रमशचन्द्र को पत् च्युत किए जाने की सूचना प्राप्त हुई, तो वह 'त्रिभिध भावा' से श्यान्दालित हो उठा। उन भावा में भय का भाव भी सम्मिलित था। श्रार नहीं नौफरी न मिला तो क्या होगा ? उगके स्वाभिमान ने कहा, 'जहाँ श्रादर नहीं है, श्राय नहीं है, ऐसी जगह जाकर सिर्फ भुक्ताने और गिड़गिड़ाने से मर जाता ज्यादा श्रच्छा है—जहाँ प्रयास है, वहाँ सफलता है ! साहस ने समर्थन दिया। बस, उगो कुछ न करने का निश्चय कर लिया। उसने दफ्तर जाना बन्द कर दिया, उस सूचना का बोझ उत्तर भी नहीं दिया। दफ्तर का चपरासी एक दिन रात्री दिना का नगर-गाह दे गया। जीविका की समस्या विकट रूप धारण कर सामने आ उपान्धन हुई।

शहर का कोई दफ्तर, कोई नगरपालिका एसा नहीं बचा जहाँ वह गया था, लेकिन हर जगह एक ही उत्तर मिला, 'शहर जगह खाली नहीं है। समाचार-पत्रों में निकलने वाले पिशाचन देख-देगनर, उसने श्रौत प्रार्थना-पत्र भेजे, किन्तु वहाँ सफलता नहीं मिली। उसने नेराश्य की सामा न थी।

दो-तीन भाग्य में ही उसकी हुलिया तग हो गई। रिफायत से चलता तो उसने सांग्रा हा न था। पन्ने की जमा की हुई कोई रकम पास न थी। दफ्तर से का छापी-सी रकम मिली थी—वह चार छ रात ही में समाप्त हो गई। श्रृण का भोक्त ऊपर लद गया। मकान का

निराशा चर गया, दूरानदारों का पावना, नीर का घेना ! तमाजे पर तमाजे आने लगे । एक चचेरे भाइ के अतिरिक्त उसके काइ न था, और वह भी सश रिचा ही रहता था । जुसुबत क समय रिश्तेदार कय किमी का माथ देते हैं ? और एक हीरालाल का छोड़कर, अन्य मित्रों की नजरें भी बदल गईं ।

एक दूनादार ने आज उसे बहुत परेशान किया ! नीरों को भन्ते भन्ते तग आरर वह खुद तमाजा करो आया । रमेश ने टाल मटल किया । बस, मगाड़ा हा गया । एक घंटे का वरभद के बाद वह किसी तरह टला । नीरों ने काम करना छोड़ दिया था । घर कूड़ा-ककट से भर गया था । आज कुछ माा वा भी न था । अर इस भगवान् दूरानदार वा देते के लिए वहाँ ग रुपए लाये जायें ? चिन्ताओं ने निरा हुआ, मोवेदना वा रिक्त भार हृदय पर लिये हुए, वह चारपाइ पर जा लेटा । हीरालाल ? उसे तग करना क्या ठीक है ? कइ मर ता वह रुपए दे चुका है । इस तरह यरर सहायता की याचना करन से रहीं उसका रग भी बदल गया, ता ? नहा, नहा, वह कभी रग न बदलेगा । वट सच्चा मित्र है । किन्तु बार-बार किसी के सामने हाथ फैलाना क्या उचित है ? निराल विचारों म पँसा हुआ वह दिन भर पड़ा रहा ।

सव्या के समय वह हासलाल के घर गया । अपनी बैठक म एक आरामकुर्सी पर लेटा हुआ हीरालाल समाचार-पत्र पढ रहा था ।

“जय गमजा की !”

“जय गमजी का ।” अररवार टगकर हासलाल ने कहा ।

“आध्या, बंठा, रमश !”

रमेश एक कुर्सी पर बैठ गया ।

“कहा, कहा मिलमिला लगा ?”

“अभा ती कहा नहा ।”

“बड़े अफमास की बात है। मुसीबत जय एक बार आ जाती है, तो आसानी से नहीं टल सकती। खैर, देखो, इसमें एक विशापन है। यहाँ भी अर्जों भेज दो।”

उत्सुकता से समाचार-पत्र लेकर, रमेश वह विशापन पढ़ने लगा। हीरालाल उठ खड़ा हुआ।

“तुम्हें जल्दी तो नहीं है ?”

“नहीं, कोई जल्दी नहीं है।”

“तो मैं जरा स्नान कर आऊँ। तब तब तुम अखबार देखो।”

“अच्छा।”

हीरालाल भीतर चला गया। रमेश फिर विशापन देखने लगा। एक कम्पनी को एक क्लर्क की आवश्यकता थी। वेतन भी बुरा न था—४०) प्रति मास। कल ही प्रार्थना पत्र भेज देना चाहिए। जल्द, भेजना चाहिए। वही यह जगह मिल गई, ता तफलीफ काफी दूर हो जायगी।

सहसा उसकी दृष्टि सामने के छोटे कमरे की ओर गई। उसका दरवाजा खुला हुआ था। उसके अन्दर उस दीवार से लगे हुए कई टुकड़े रक्खे हुए थे। उनमें बाराही रंगवाला वह टुकड़ा भी था, जिसमें से निराला सर कइ बार हीरा ने उसे छुए दिष्ट था। उड़ा भाग्यवान है हीरा। लडफपन से वह देखजा आ रहा है, कभी प्रार्थिङ कष्ट उसे नहीं हुआ। इस समय भी ठीकेदारी करता है, ग्रीक मूर माल काटता है। काँ छेका साधन उसने पास भी होता, तो किता मुगमय होता उसका जीवन।

उस कमरे से हटकर, चित्रों से सजित दीवारों पर श्रुती हुई उसकी दृष्टि भेङ पर आकर रुक गई। कलमदाग के सामने पड़े हुए पैङ पर चाभियाँ का गुच्छा पड़ा हुआ था। गुच्छे में रइ पीली चामी भी था, ता उस टुक में लगे हुए ताल का सोलती थी। ‘२।



पर बैठ गया, और पड़ने की काशिश करने लगा। पत्तियाँ नाच उठीं, पत्ने का प्रयत्न निष्फल हुआ। 'अब क्या करना चाहिए ? नहीं, नहीं, भागने से मामला खोपट हो जायगा। किंतु, हीरा का सामना कैसे करना होगा ? वैसे ही माहस के साथ जैसे अभी यह भयंकर काम किया था। राम बन गया, सारी परेशानी अब दूर हो जायगी ? किंतु, यह दुःकृत्य ? भ्रम मात्र है शुण्ण अणुशुण्ण का विचार। नितने रुपये हैं ? नितने भी हा, काफ़ी हैं। अभी देखने का मौक़ा नहीं है।

हीरालाल आ पहुँचा। रमश का हृदय फिर वेग से धड़कने लगा। अखबार में मुग्न छिपाए हुए वह बैठा रहा।

“निशापन पत्ता, रमश !”

“हाँ !” अखबार कुछ पढ़ाने सामने को ताकते हुए उसने उत्तर दिया।

“अना भेजागे ?”

“ज़रूर भेजूंगा !” जमान की लड़खड़ाहट रोकते हुए उसने कहा।

एक सिगरेट जलाकर हीरा ने सिगरेट का पैकेट और दियासलाई का बक्स रमश के हाथ में दे दिया। अखबार फर्श पर एक आर रतकर, सिगरेट जलाकर, उठकर, सिगरेट का पैकेट और दियासलाई का बक्स मेज पर रखकर वह चला—“अब इजाजत दो, हीरा !”

“क्या ? पैठो न।”

“नहीं, अब जाऊँगा। एक जगद जाना है। अजा भी लिखना है। जय रामजी की !”

“जय रामजी की !”

उस घर से बाहर निकलकर, शान्ति की साम लेकर, वह तेज़ी से अपने घर की ओर चला।

×

×

×

घर पहुँचकर, भीतर से दरवाज़ा खोलकर, वह सीधे शयना-गार में गया और चारपाई पर लेटकर, जेब में नोट का बडल



मासभागी व श्वभ-उभर दूरकर, य उग, बागिया का गुच्छा  
 उटाया आर तर्की मे उत कमर मे पुस धारा । अन्का हृदय धग,  
 स धड़क रग था, शरीर धीरे रहा था, किन्तु उतके चर पर विकर  
 सफल की गता था । उत दूक फ मामन पश प बैठकर उतने  
 ताल म जुड़ा लगा । वदा आगामी म ताला गल गता । तप, सुरा  
 दूक सचकर, व देवने लगा । वह कपडा व ताव माड-का का  
 एर गल । अन्स मे मोर्ग का एर गल रग और व हपए । प्रसन्नता  
 स उधरी आगे लमकी लगी । ताग का सफल गटापर उतने  
 अपनी भावग जेव म रग लिया, फिर वका बन्द करके कपडे उता के  
 त्या सता दिए । टर गन्द कर, ताला लगाकर, उठकर, व कमरे से  
 गंग निम्ला । गन्हा पीड पर रखकर, अलमार लेकर, वह तुरयी

पर बैठ गया, और पत्ने की फोड़िश करने लगा। पत्नियाँ नाच उठीं, पढ़ने का प्रयत्न निष्फल हुआ। 'अब क्या करना चाहिए ? नहा, नहा, भागने से मामला चौपट हो जायगा। किन्तु, हीरा का सामना कैसे करता हागा ? वैसे ही सादर के साथ जैसे अभी यह मयकर काम किया था। काम बन गया, सारी परेशाना अब दूर हो जायगी ? किन्तु, यह दुःकृत्य ? भ्रम मान है गुण अगुण का विचार। कितने रुपये हैं ? जितने भी हा, काफी हैं। अभी देखने का मास्का नहा है।

हीरालाल या पहुँचा। रमेश का हृदय फिर बेग से धड़कने लगा। अचानक म सुन्न द्विपाण हुए वह बैठा रहा।

“निशापन पत्नी, रमेश !”

“हाँ !” अचानक कुछ हटाकर सामने का तारते हुए उसने उत्तर दिया।

“अर्थाँ भेनागे ?”

“ज़रूर भेजूगा।” जगान की लड़खड़ाहट रोन्ते हुए उसने कहा।

एक सिगरेट जलाकर हीरा ने सिगरेट का पैकेट और दियासलाई का बक्स रमेश के हाथ में दे दिया। अखबार पढ़ पर एक आर रगकर, सिगरेट जलाकर, उठकर, सिगरेट का पैकेट और दियासलाई का बक्स मेज़ पर रखकर वह बाना—“अब इजाजत दो, हीरा ?”

“क्या ? बंठो न।”

“नहीं, अब आऊँगा। एक जगह जाना है। अर्जा भी लिखनी है। जय रामजी की !”

“जय रामजी की !”

उस घर से बाहर निकलकर, शान्ति की सँभ लेकर, वह तेज़ी से अपने घर की ओर चला।

×

×

×

घर पहुँचकर, भातर से दरवाजा उद कर, वहाँ सीधे शयाना-गार में गया और चारपाई पर लेटकर, जेब से नोटों का ढल

अच्छा मौना है। अगर ! तहा, नहीं, एता दुष्कर्म उसम न हो सकगा। किन्तु यदि हाथ न इस समय गहाया न की, तो ! देगा भी, ता किना द देगा ? जास उथा ददता के साथ शुयोग ने काम उठानेवाले ता हा इम समार न चल शाही है। इस तरह अमर पर नून जा म फिर पढ़नाही ही साथ रहेगा। पाप पुण्य का विचार न्त अम मात्र है। सच्चाई और अमानदारी के मार्ग पर अमा तप चलन से क्या प्राप्त हुआ ? अरमान, आश्रय शून्यता ! नहीं, फा हा नरा। अमगुणा के पथ पर चलने म हा यदि मुन है, ता यह क्य मुन से वाचन रह ? किन्तु, यदि तारा था गगा, हा ? नगा, अमा व न ! आ सक्ता। शोच न निरूक्त होने, मुन की सफाई करने अ स्नान करने म उत एक घट से कम नहीं लगता। कहा नीकर ही था गया, ता ? दगा चामगा तर। इस तरह आगा पीछा करने से काम न चलगा। मादम से काम लन क अमर पर कायगा प्रकट करना अपने पुण्यन न अपमानित करता है। उस, घस, अर चूसगा न चाणिए।

सावधान न इधर उधर देखकर, वह उज, चाभिया का मुच्छा उठाया और तना से उम कमरे न पुस आया। उसका हृदय वेग से बढ़क रहा था, शरीर काँप रहा था, किन्तु उसक चेहर पर विकट सजल्य ही छाया था। उस दर के सामने पर्श पर बैठकर, उसने ताल म दुखी लगा। बड़ा आसानी से ताना खुल गया। तर, तुरत दूर खलकर, वह खेलन लगा। वह कपड़ा के नीचे काड-बोर्ड का एक पत्त। पत्त म नाग का एक बटल था और वह रुपए। प्रसन्नता से उसकी आंखें चमकन लगीं। नाग का बटल उठाकर उसने अपनी भीतरी जेब म रख लिया, फिर पत्त बन्द करके कपड़े ज्यों के त्या सगा दिए। दूर नन्द कर, ताना लगाकर, उठकर, वह कमरे से बाहर निकला। मुच्छा पैठ पर रखकर, आखबार लेकर, वह कुर्ची

पर बैठ गया, और पढ़ने की कोशिश करने लगा। पनियौं नाच उठा, पढ़ने का प्रयत्न निष्फल हुआ। 'अब क्या करना चाहिए ? नहीं, नहीं, भागने से मामला चौपट हो जायगा। किन्तु, हीरा का सामना कैसे करना होगा ? कैसे ही मात्स के साथ जैसे अभी यह भयंकर काम किया था। काम बन गया, सारी परेशानी अब दूर हो जायगी ? किन्तु, यह दुष्कृत ? भ्रम मात्र है गुण-अवगुण का विचार। नितने रुपये हैं ? जितने भी हों, काफी हैं। अभी देखने का मौका नष्ट है।

हीरालाल आ पहुँचा। रमेश का हृदय फिर धग स धक्के लगा। अखबार में मुख छिपाए हुए वह बैठा रहा।

“विज्ञापन पत्र, रमेश !”

“हाँ !” अखबार कुछ हटाने सामने का तारते हुए उसने उत्तर दिया।

“अपना भेजागे ?”

“जरूर भेजूँगा।” जगत की लड़खड़ाहट रोकते हुए उसने कहा।

एक सिगरेट जलाने हीरा ने सिगरेट का पैकेट और दियासलाई का बक्स रमेश के हाथ में दे दिया। अखबार फर्श पर एक आर रखने, सिगरेट जलाने, उठकर, सिगरेट का पैकेट और दियासलाई का बक्स मज पर रखने वह बाला—“अब इजाजत दो, हीरा ?”

“क्या ? बैठो न !”

“नहीं, अब जाऊँगा। एक जाह जाना है। अर्जों भी लिखनी हैं। जय रामजी की !”

“जय रामजी की !”

उस घर से बाहर निकलकर, शान्ति की सोस लेने, वह तेज़ी से अपने घर का आर चला।

×

×

×

घर पहुँचकर, भीतर से दरवाज़ा बन्द करके, वह सीधे गार में गया। गंगाई पर लेटकर, जेब से नाथों

निकालकर, नोट गिण्टो लगा। इस-दस रुपये के धौपन्नीस तोड़ पा। इतनी बड़ी रकम यां मुफ्त में मिल गई। पाह। छ, ग्नीं उक कहीं गीहरी कर। पर भी शायद इतना रुप न मिलत। श्रुत्य सुता हा क बाद भी ज रकम बन रहेगी, यह छ मरीं उक निताया से रहा के लिद कारी होगा। चिागँ अथ द्विती दूग आदमी का दग्यागा रागगटाव, यहाँ तो अथ बेन ही पैा है। वाह। पाह। किन्तु किता अप-य कम क दाग प्रात हुआ है यद धन। जप-य का। निष्ठा है यह विचार। हीरालाल ने क्या उबाह और इमानदारी ही स यह धन प्रात किता होगा। सब जानते हैं कि गहाँ दा करर का राँ इला है वहाँ से लोग रग रगट यगून करत है। इतना अनुचिन लाभ उठाना क्या जप-य कम गहीं है। एक ग्नी है, आ भूषा है, क्नी हागत म है, श्रुग क नाम से ला है, अविना का निधि पाग कौद साधन नहीं है, वह अनुचिन दग से कुछ धा प्राप्त कर लेता है, दूसरा ग्नी है, जो गुगाल है, अरिक धन की दिते आपश्य का गहीं है, तद उचित क माय ही अनुचिन लाभ भी उठाना रहता है। एव का कम यदि जप-य है, तो दूसर क कम का यह अंश जप-य करा नहीं है, जियका आधार अनीनित्य है। साउ साक यह है कि हमारी नैतिक धारणाएँ अथ-निश्चान तथा तर्हीन विचार पर आधारित हैं। इन धारणाओं प अतुगार चाकर क्या मिलेगा। पग-य पर ठाकरें, कुगन, जलन, पतन, धरग्य अन्त। नहीं, नहीं, उत ता मुत चादिण, दिनभ सुत—संसारिक मुग।

हीरालाल को यदि उसक ऊपर शक हुआ, तो। शक हा जायगा, तो क्या होगा। शक ता सबूत नहीं है। उसक पास सबूत ही क्या है। जो कुछ है, कुछ नहीं के बराबर है। सपस बढ़ा सबूत तो यहाँ मौजूद है। और इस सबूत पर हीरा क्या, क्रिया की पहुँच हो करना असम्भव है। इस सबूत को एसी जगह छिपा देना चादिण, यहाँ काद इसका पता न पा सके।

गोट समेटकर, उठकर, नाटा को एक टीन के डिब्बे में बन्द कर, लालटेन जला कर, एक करहुली लेकर, वह उस कमरे में गया जिस में जिस रकनी जाती थी। उस कमरे का कच्चा प्रश जगह जगह उबड़ा था। एक स्थान पर बैठकर वह करहुली से ज़मीन सादने लगा। थोड़ी देर में एक छोटा-सा गढ़वा तैयार हो गया। उस गढ़वे में डिब्बे को रखकर, मिट्टी ढालकर, उसने जमीन बराबर कर दी। फिर एक बड़ा घड़ा लाकर उस स्थान पर रख दिया, बड़े घड़े पर दो छोटे घड़े रख दिए, और उसके अगल-बगल भी उसने कई घड़े सजा दिए। अब भला, काइ क्या खा के उस मयूत का पता लगा सकेगा ! उसकी बाजूं खिल गईं। करहुली और लालटेन लेकर, वह उस कमरे से मुत्करता हुआ नहर निकला। अब मज़े से बैठा, और चैन की घड़ी बजाओ।

रसोइ-घर में करहुली रखकर, वह शयनागार में गया, लालटेन एक ओर पक्ष पर रख दी, कोट उतारकर बूँटी पर टाँग दिया और जूते उतारकर निस्तार पर लेट गया। अब क्या करना होगा ? आगामी कार्य मम पर विचार करता हुआ, यह बड़ी देर तक पड़ा रहा।

सहसा किमाने घर के बाहर से आवाज लगाई—“रमेश बाबू ! रमेश बाबू !”

यह तो हीगलाल की आवाज है ! गनच हो गया। अब क्या करना चाहिए ?

“रमेश बाबू ! रमेश बाबू !”

खामोश रहना क्या अब उचित है ? नहीं, नहीं, चलकर दरवाजा खोलना और साहस के साथ उसका सामना करना चाहिए।

सदर दरवाजे की साँकल जोर से खड़खड़ा उठी। सहम कर, वह चारपाई से उतरा।

“रमेश ! ओ रमेश !”

निकालकर, नाट गिनने लगा। दस-दस रुपए के चौपालीस नोट थे। इतनी बड़ी रकम या मुफ्त में मिल गई। वाह! छ महीने तक वहाँ नौकरी करने पर भी शायद इतने रुपए न मिलते। श्रृणु बुद्धा देने के बाद भी जा रकम उच रहेगी, वह छ महीने तक निपायत से रहने के लिए काफी हागी। चिन्ताएँ अब किसा दूसरे आदमी का दरवाजा खट्खटायें, यहाँ तो अब चंन ही चैन है। वाह! वाह! किन्तु कितने जघन्य कर्म के द्वारा प्राप्त हुआ है यह धन। जघन्य कर्म! मिथ्या है यह निवार। हीरालाल ने क्या सघाइ और इमानदारी ही न यह धन प्राप्त किया हागा? सब जानते हैं कि जहाँ दा रुपए का खर्च हाता है वहाँ ये लोग दस रुपए घसुन करते हैं। इतना अनुचित लाभ उठाना क्या जघन्य कर्म नहीं है? एक व्यक्ति है, जा भूखा है, पगी हालत में है, श्रृणु के बाम से लदा है, जीविका का जिरके पास कोई साधन नहीं है, वह अनुचित दग से कुछ धन प्राप्त कर लेता है दूसरा व्यक्ति है, जो मुशहाल है, अधिन धन की तिसे आयुष्य कता नहीं है, वह उचित के साथ ही अनुचित लाभ भी उठाता रहता है। एक का कर्म यदि जघन्य है, तो दूसरे के कर्म का वह अश जघन्य क्यों नहीं है, जिसका आगर अनौचित्य है? रात साक यह है कि हमारी नैतिक धारणाएँ अध विरवास तथा तरहीन निचारा पर आधारित हैं। इन धारणाओं के अनुगार चलकर क्या मिलेगा? पग-पग पर ठोकरें, कुत्न, जलन, पतन, करण अन्त! नहीं, नहीं, उसे तो मुख चाहिए, सिग्ध सुख—सांसारिक सुख।

हीरालाल को यदि उसके ऊपर शक हुआ, तो? शक हो जायगा, तो क्या हागा? शक तो सबूत नहीं है। उसके पास सबूत ही क्या है? जो कुछ है, कुछ नहीं के बराबर है। समने बड़ा सबूत ता यहाँ मौजूद है। और इस सबूत पर हाया क्या, निसी की पहुँच हा सका असम्भव है। इस सबूत को ऐसी जगह त्रिपा देना चाहिए, जहाँ कोई इयका पता न पा सके।

नोट समेटकर, उठकर, नाटा को एक टीन के डिब्बे में बन्द कर, लालटेन जला कर, एक करछुली लेकर, वह उस कमरे में गया जिस में किस रखी जाती थी। उस कमरे का स्या फर्श जगह जगह उखड़ा था। एक स्थान पर बैठकर वह करछुली से ज़मीन खोदने लगा। थोड़ी देर में एक छोटा-सा गड्ढा तैयार हो गया। उस गड्ढे में डिब्बे को रखकर, मिट्टी डालकर, उसने जमान रखकर दी। फिर एक ढ़ा घड़ा लाकर उस स्थान पर रख दिया, ढ़े ढ़े पर दो छोटे ढ़े रख दिए, और उसके अगल-अगल भी उसने कड़ ढ़े सजा दिए। अब भला, कोई क्या खा के उस सयूत का पता लगा सङ्गा। उसकी बाछें खिल गईं। करछुली और लालटेन लेकर, वह उस कमरे से मुस्कराता हुआ बाहर निकला। अब मजे से बैठे, और चैन से बशी बजायो।

रसोइ घर में करछुली रखकर, वह शयनागार में गया, लालटेन एक ओर फर्श पर रख दी, काट उतारकर खूँटी पर टाँग दिया और जूते उतारकर त्रिस्तर पर लेट गया। अब क्या करना होगा ? आगामी कार्य-क्रम पर विचार करता हुआ, वह बड़ी देर तक पड़ा रहा।

सहसा किसाने घर के बाहर से आवाज लगा—“रमेश बाबू ! रमेश बाबू !”

यह तो हीरालाल की आवाज है ! गजन हो गया ! अब क्या करना चाहिए ?

“रमेश बाबू ! रमेश बाबू !”

खामोश रहना क्या अब उचित है ? नहीं, नहीं, बलकर दरवाजा खोलना और साहस के साथ उसका सामना करना चाहिए।

सदर दरवाजे की सॉफल जोर से खड़खड़ा उठी। यह कर, वह चारपाई से उतरा।

“रमेश ! ओ रमेश !”



‘आया, भाई!’ हातों में लेकर दरवाजे की आँखों में।

दरवाजा खोलकर, उसने हीरा की आँखें देखा। गंभीर क आँखों में क्षीरी हुई उसका मुँहमाँस पर विकृत निगमना थी।

‘तुम्हें क्या हुआ?’

‘नहीं तो। आँखा।’

हीरा ने धीरे से प्रश्न किया। दरवाजा भड़ककर, खसका, सँकल जा रहा था। फिर वह निडर की आँखें लगा। शीतल से पट्टा लगा, शीतल धुरधुरियाँ पर टि गल। खसका कंधे की आँखें खसका से दलते हुए हाथों में कहा— ‘तुम्हें तो बड़ी आँखें हैं, तुम्हें क्या हुआ?’

जवाब लेकर खोल गया— ‘क्यों क्या हुआ?’

‘निमील मर टूट तो ४८०) क नष्ट निकाल निम।’

‘यह तो बहुत पुग हुआ। इतने मरप प म क्यों मरते हो?’

‘आप ही तो बँधे न निकाले थे, या?’ ‘अब आदमी को कब देना है?’

‘अज्ञान मामला है। यह किन जहर का खराब है?’

‘नीकर क ऊपर शक जाता है। छिपित, आप तक कभी उगने, एसी हरकत नहीं की थी।’

‘आपका किमीके शमा का कुछ टाक नहीं है, हीरा!’

‘यह तो टोन कहते हो।’

‘ता, अब क्या कराग?’

‘इस चक्कर में तो हैं कि क्या करें। पुलिस का रिपोर्ट करना तो निचून मालूम होगा है?’

‘क्या? क्या हाल है?’

‘अगर मायम बँकू है, तो निचून खताया जायगा।’

‘आर, अगर यह अनराधा है, तो?’

‘तो भी कस्ये शायद ही हाथ आय।’

“जैसा साचो, भाइ ! मेरे ख्याल मे तो रिपोर्ट कर देने म कोई हज नहीं है ।”

“नहीं, यार, अत्र रामाश रहना ही मुनासिब मालूम होता है । ज्यादा से ज्यादा यह कल्लेगा कि भीरम को निकाल दूँगा ।”

“यही मुनासिब हो, तो यही करो ।”

“अच्छा, यार, अत्र चलूँगा ।”

“बैठा न थोड़ी देर और ?”

“नहीं, भाइ, दिमाग परेशान है । अत्र हजात दो । जय रामजी की !”

“जय रामजी की !”

हीरा उठकर सदर दरवाजे की ओर चला । लालटेन लेकर रमेश उसके पीछे गया । दरवाजा खोलकर, घर के बाहर निकलकर, हीरा ने कहा—“कल अर्जी जरूर भेज देना ।”

“अच्छा ।”

दरवाजा बंद करके, वह गर्व से मुस्कराने लगा । अपना पार्ट कितनी अच्छी तरह अदा किया उसने । वाह ! वाह ! रमेश क्या, कोई भी उसे उस समय देखकर नहीं भाँप सकता था कि यह उसी की बरतूत है । प्रसन्नता से उछलता हुआ, शयनागार में जाकर वह फिर निस्तर पर लेट गया ।

हीरालाल क्या आया था इस समय ? क्या सलाह लेने के लिये ? लेकिन, पहले तो कभी किसी मामले म इस तरह आकर उसने उससे सलाह नहीं ली था ? तब क्या उसे उसके ऊपर शक हो गया है ? शायद यही बात है । बैठक में कुर्सी पर बैठकर, उसने उसके चेहर की आर गौर से देखा था । उसकी उस तीक्ष्ण दृष्टि म भाँपने का प्रशंस अदृश्य निहित था । किंतु उसने अपने मुर से कोई एसी बात नहीं निजाली जिससे उसका सदेह प्रकट होता । गीरा

जैसा व्यङ्गि ऐसी भूल वैसे करता ! तीरर के प्रति भी तो उसने उदारता का भाव ही व्यक्त किया था, अपना माताभाव प्रकट न होने देने के लिये। अर्जी भेजने की तात्पर्य करने उसके प्रति भी तो उसी मरानुभूति प्रकट की थी ! यह भी उसकी एक चाल थी। अपना वास्तविक अभिप्राय गुप्त रखने ही के लिये उसने ऐसा किया था। यदि सम्मुख उसके विरुद्ध भी उसी रिपोर्ट कर दी, तो क्या कर लेगी पुलिस ? लेकिन, माल का पता न लगा सकेंगे, तो भी पुलिसवाले उसे तग करने से बाज न आयेंगे। तब ! भागना चाहिये ! हाँ, तुरन्त भागना चाहिये। अभी मौना है। पुलिस एक घंटे से पहन न आ सकगी।

तुरन्त चारपाई से उतरकर, लालटेन लेकर, वह शीघ्रता से उस कमर में गया। घड़े हटाकर, जमीन सादकर, लिन्हा निकालकर, जमीन मसाल कर, घड़े पर फ ल्यों रखकर, वह फिर शयनागार में वापस आया। तेजी से बिस्तार बाँधकर, एक टन में कुछ कपड़े और जूरी चीजें रखकर, फाट पड़िनकर, डिन्हा चालकर नाटो का बडल निकालकर, फाट की भीतरी जेब में रखकर, जूते पहिनकर, वह घर से बाहर निबला। दरवाजे पर ताला लगाकर वह इक्का के अड्डे की ओर लपका।

पचि मिनट में इन्हा आ गया। ताला खोलकर, घर से बिस्तार और टक निकालकर, लालटेन बुझाकर, उसी फिर घर के दरवाजे पर ताला लगा दिया। टक और बिस्तार इक्का पर लदवा कर वह समाप्त हो गया। पड़ोसी सुखदेव समाप्त आया।

“कहाँ की तैयारी है, गबूजा !”

“एक रिश्तेदार के यहाँ जा रहा हूँ। शाम को उठवा खत आया था। वह बहुत बीमार है। उन्हें देखने जा रहा हूँ। इक्के बाल ! मन्नाआ। देर हो रही है। गबूजा “सदेव, राम, राम !”

“राम, राम, बाबूजी !”

इन्का चल पड़ा। तब उसने शांति की सीस ली। अब पुलिस अगर आयगी, तो भी मुरिकल से उसे पकड़ पायगी।

“बताये चलो, इक्केवाले !”

“बहुत अच्छा, बाबूजी ! किस गाड़ी से जाइएगा !”

“कलकत्तावाली गाड़ी कै बजे आती है ?”

“वह ता साढ़े नौ बजे आती है ! घनराष्ट्र नहीं, आध घंटा पहले ही टेशन पहुँच जाइएगा !”

“जल्दी ही पहुँचा ठीक होता है, भाई !”

“यह तो ठीक ही है, बाबूजी ! जल्दी पहुँचने में मुनिस्ता रहता है। बड़ी चल, बड़ी चल ! जाने का दर सेर चादिये, चलने क नाम नानी मरती है ! हाँ, हाँ ! उधर कहीं मुडी जा रही है !” इक्केवाला घोड़ी से मगड़ने लगा।

रमेश अपने विचारों में मग्न हो गया।

स्टेशन पहुँचकर कुली से असबाब उतरवाकर, इक्केवाल का पैसे देकर, टिकट खरीदकर, वह इटर के वेटिंग रूम में जा बैठा। स्टेशन का यही वह स्थान था, जो उसे किञ्चित् सुरक्षित प्रतीत हुआ। पुलिस कहीं आती न हा ? छिपकर देखने का यहाँ काफी मौका है। यह बहुत अच्छा है कि यहाँ कोई और मुसाफिर नहीं है। पीछे की तरफ भी इस कमरे में एक दरवाजा है। पुलिस आ जाय, तो भी भागने का पूरा मौका है। भाग्य पूरी तरह उसकी सहायता कर रहा है। कुरसा से उठकर, वह सामने क दरवाजे पर गया, और सावधानी से इधर उधर देखने लगा। रेलवे पुलिस का एक हेड कान्स्टेबिल उधर टहलता हुआ दृष्टि गोचर हुआ। इतमीनान से टहलानेवाला वह हेड कान्स्टेबिल उसकी खोज में नहीं है, और कोई पुलिसवाला दिग्गद नहीं देता। अभी तक तो कुशल है। लौटकर, सिगरेट जला

पर, वह अरामपुरी पर लोट गया। याड़ी देर के बाद वह फिर उठकर दरवाजे के समान गया, और भीतर ही खड़े बाहर झाँकने लगा। दौड़ का वाद चिह्न फिर दिखाई न दिया। इस तरह जब तक गाड़ी आ नहीं गई, तब तक थोड़ी थोड़ी देर में बार बार वह सावधानी से देखता रहा। गाड़ी के आ जाने के बाद जब अन्य यात्रियों की दौड़ भाग शुरू हो गई, तो वह भी अपना अस्बाग उठाकर इतर के एक सिन्धे में सवार हो गया। एक रिडनी के समीप बैठकर वह बाहर झाँकने लगा। दौड़ फिर भी आता दिखाई न दी।

जब तक गाड़ी खड़ी रही तब तक वह उसी तरह पैठा हुआ भाँकता रहा, और जब गाड़ी चल पड़ी, तब शान्ति की साँस लेकर, सिगरेट जलाकर, वह लोट गया। अर डर की वाद बात नहीं है! कलकत्ते पहुँचकर वह झिन्दगी के मजे लूटगा, फिर वहाँ वहाँ नौकरी करके जम जायगा। चिन्ताएँ अब उसके पास न पटकेंगी, मुन्व उसकी सेवा करेगा। मन्व मारें अब तकाज करेवाले, सिर पीट-पीट करे रोएँ।

×

×

×

बलकत्ता पहुँचकर, वह एक होटल में ठहर गया। कई घंटे सिलानाकर, इट, जूते तथा रसिकता की श्रय सामग्रियाँ खरीदकर, दो-तीन दिन में वह लौट हो गया। फिर वह रौर-सपाटे में, रस-रग में तल्लीन हो गया।

सिनेमा, नृत्य, संगीत, भदिरा—इन साधनों के द्वारा असीम सुख उसे प्राप्त होने लगा। सौंदर्य के हाट की एक परी ने उसे मोह लिया। उसीक साथ अभिजात समय व्यतीत करने में उसे अद्भुत आनन्द प्राप्त होने लगा। वह ग्वम तेनी से कम होती गई।

अन्त में वह दिन भी आ गया, जब दस का फल एक नोट उसके पास रह गया। तब उसे होश आया। अब क्या करना चाहिये ? नौकरा ! लेरिन, वहाँ रखी है नौकरी इस बकारी क जमाने में ? एब

बार फिर ? नहीं, नहीं। कुएँ में एफ़ गार बूदने पर किसी तरह उच जाने से आदमी फिर कुएँ में बूदने के योग्य नहीं हो जाता। किन्तु, जो कार्य इतनी सरलता से किया जा सकता है उसे क्या कुएँ में बूदना कह सकते हैं ? फिर वह सर्वद्व तो ऐसा काम करेगा नहीं। एक गार और—कवल एक गार और। नहीं, नहीं, यह ठीक नहीं है। ठीक हा था न हो, उसे जीना है, और सुप्त से जीना है। और जब कोई, अन्य साधन प्राप्य नहीं है, तो जो साधन प्राप्य है उससे लाभ न उठाना मूर्खता है।

दिन के एफ़ बजे का समय था। सन्तुष्ट निरन्तर की दशा में वह एक बेरु के सामने खड़ा हुआ था। सामने सड़क पर सवारियों और राहगीरों की भाँ आ-जा रही थी। किन्तु, वह कुछ नहीं देखा रहा था। उसका मस्तिष्क तो केवल एक प्रश्न में उलझा हुआ था। हाँ या नहीं ?

भाड़ी देर के बाद वह बेरु में घुसा। धन के उस केन्द्र में बेसी ही चहल-पहल थी जैसी साधारणतया ऐसे स्थान पर दिखाई देती है। रुपये जमा करीवाले, निजालनेवाले तथा अन्य कमचारी—सब व्यस्त थे। इधर-उधर घूमकर, रमेश एक काउटर के सामने जा खड़ा हुआ। वहाँ वह आदमी खड़े थे। दो व्यक्ति रुपया लेकर चले गये। उनके स्थान पर एक व्यक्ति आकर खड़ा हो गया। दो व्यक्तियों को रुपये देकर, क्लर्क ने उस व्यक्ति की आर देखा, उसने अपना चेक क्लर्क के सामने बढ़ा दिया। चेक अच्छी तरह देखकर उस पर मुहर लगाकर, क्लर्क ने नोटों की एक गड्डी उठाई। नोट कई गार गिनकर, उसने एक छोटी सी गड्डी उस व्यक्ति के सामने गिखवा दी। उसने गड्डी उठाई। इसी समय उसका मित्र आकर उसके गल म खड़ा हो गया। गड्डी काउटर पर रखकर, वह उससे बार्त कराने लगा। रमेश के लिये यह स्थिति सुयोग्य था। उसका हाथ धीरे धीरे गड्डी की आर खिखने लगा।

कर, वह अरामपुरसा पर लोट गया। थोड़ी देर के बाद वह फिर उठ कर दरवाजे के समीप गया, और भीतर ही रखे बाहर भाँकने लगा। दौड़ का काँड़ चिह्न फिर दिखाई न दिया। इस तरह जब तक गाड़ी आ नहीं गई, तब तक थोड़ी धाड़ी देर में बार-बार वह सावधानी से देखता रहा। गाड़ी के आ जाने के बाद जब अन्य यात्रियों की दौड़ भाग शुरू हो गई, तो वह भी अपना असबाब उठवाकर इतर के एक बिम्ब में सवार हो गया। एक सिङ्गा का समीप बैठकर वह बाहर भाँकने लगा। दौड़ फिर भी आता दिखाई न दी।

जब तब गाड़ी रुकी रही तब तब वह उसी तरह बैठा हुआ भाँकता रहा, और जब गाड़ी चल पड़ी, तब शान्ति की साँस लेकर, सिगरेट जलाकर, वह लोट गया। अर डर की कोई बात नहीं है। कलकत्ते पहुँचकर वह किन्दगी के मजे लूटेगा, फिर वही कहा नौकरी करके जम जायगा। चिन्ताएँ अब उसके पास न पटकेंगी, मुस उसकी सेवा करगा। भग्न मारें अब तक्काजे करनेवाले, सिर पीट-पीट कर रोएँ।

X

X

X

कलकत्ता पहुँचकर, वह एक होटल में ठहर गया। कई सप् सिलवाकर, हैट, जूते तथा रजिक्ता की अन्य सामग्रियाँ खरीदकर, दस-तीन दिन में वह लेस हो गया। फिर वह सैर-सपाटे में, खरग में तल्लीन हो गया।

सिनेमा, नृत्य, संगीत, मदिरा—इन साधनों के द्वारा असीम सुख उसे प्राप्त होने लगा। सौंदर्य के हाट की एक परी ने उसे मोह लिया। उसीने साय अधिरांश समय व्यतीत करने में उसे अद्भुत आनन्द प्राप्त होने लगा। वह रकम तेजी से कम जाता गई।

अंत में वह दिन भी आ गया, जब दस का जेबल एक नोट उसके पास रह गया। तब उसे दाश आया। अब क्या करना चाहिये ? नौकरी ? लेनिन, कहाँ रक्ती है ? नौकरी इस बनारी के जमाने में ? एक

तो क्या करता ? मजदूरी ! असम्भव था यह, अयोग्य था इसक लिए यह । आत्म-हत्या ? अमृतप मानव जोना पाकर उसे वृथा मिनट कर देना क्या उचित हाता ? इस विशाल नगर म सहस्रा ऐसे व्यक्ति हैं, जो अनुचित ढंग म धन कमाते हैं, वे सर गिरफ्तार क्यों नहीं किए जाते ? न्याय का चक्र इतना समुचित क्यों है कि उन्हें छु नहीं पाता ? जो धनी हैं, उन्हें अनुचित ढंग से धन अजन करने का अधिकार है किन्तु जो निधन हैं उन्हें अनुचित रूप से कुछ पाने का अधिकार नहीं है । विचित्र है विधि का विधान ! किन्तु क्या सचमुच अन्यायपूर्ण है यह विधान ? यदि प्रत्येक व्यक्ति का आचरण उसीके आचरण की भाँति हो जाय, तो कैसा हो जायगा यह ससार ? नरक-तुल्य ! अनुचित है न्याय की रोक ? नहीं, नहीं । उससे भूल हुई, भारी भूल हुई । किन्तु किसीको ऐसी भूल करने की आवश्यकता न पड़े, इसकी व्यवस्था भी तो होनी चाहिए ! हानी चाहिए, अवश्य होनी चाहिए ! किन्तु क्या करना है इन विवादग्रस्त बातों में ? जो नहीं है, उसके लिए चिंतित होना वृथा है । जा है, उसे देवता चाहिए । जो है !—उसका कथित अपराध है, यह भयकर रोठगी है, उसकी विवशता है । आगे क्या होगा ? दण्ड—सपरिश्रम वारावास ! जेल जाना होगा, जहाँ जहाँ मनुष्य मनुष्यत्व के दरने से उतर कर पशुत्व की श्रेणी में पहुँच जाता है ! हाथ रे दुर्भाग्य !

एक दिना के बाद, जब उसका मुकदमा अदालत में पेश हुआ, तो उसने अपने वयान में कहा—हाँ, मैंने रुपए लिये थे । लेकिन मैं यह मानने का तैयार नहीं हूँ कि मैंने चारा की । मुझे सख्त ज़रूरत थी, इसलिए मैंने रुपए लिये थे । अगर ज़रूरत न हाती, तो हर्गिज़ न लेता । इस शहर म हजारों आरामी नाजायज़ तरीकों से माल काटते हैं, उनके ऊपर मुकदमे क्यों नहीं चलाए जाते ? जिसे ज़रूरत है, उसे रुपया पाने का हक है । मेरे खयाल से सरकार की तरफ से इस बात का



वे दोनों गुल गुलकर बातें करते रहे। गड्डा पनडर, हाथ धीर धीर लौटा और बाट की जेब में मुस गता। धीर ने टटर, रमरा दरवाजे की धार चला। एक व्यक्ति, जो यह सब देख रहा था, तुरन्त नोटों के स्वामी के समीप गया और उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला—  
“महाशय !”

“कहिण ?”

“आपके नोट क्या हुए ?”

“भरे नोट !” मुड़कर उसने काउटर की ओर देखा और आश्चर्य से चकित रह गया।

“उधर दगिए। वह आदमी आपके नोट तिड़ी करके चला जा रहा है।”

“अर ! गलब हा गया !” वह तेज़ा से रमेश की ओर मपटा। उसके पीछे लपका उसका मित्र, और उसके पीछे खबर देनेवाला व्यक्ति।

प्राशका से फाँपकर, गरदन मोड़कर, रमेश ने पीछे देखा। तीनों तेजी से मपटे आ रहे थे। वह भागा, किंतु बच न सका। तीनों उसके ऊपर टट पट। और लोग भी आ गए। “पनड लो !” “बाँध लो !” शोर होने लगा। पुलिसवाले भी आ गए। वह गिरफ्तार कर लिया गया। जामातलाशी ली गई। नोट उसकी जेब से बरामद हुए।

सच्चा का समय था। रमेश हवालात में बंद था। उसके दुःख का पारावार न था। दुष्कर्म का परिणाम भी दुःखद होता है। बुरे काम पर यदि वह पैर न रखता, तो उसे आज यह दिन क्यों देखा पड़ता ? उससे भूल हुई, सबकुछ भयकर भूल हुआ ! एक भूल नहीं, उसमें अनेक भूल हुए। पाप के पथ पर एक बार चलने पड़ने पर एक सना अस्मय आई, तो अत्यन्त कठिन अवश्य होता है। किंतु, पाप के उस पथ पर—यदि सबकुछ वह पाप का पथ है—तो वह न चलता

इस तरह एक वर्ष गीत गया। एक दिन एक ऐसी घटना घटी, जिसने उसके जीवन की धारा को एक नई दिशा में मोड़ दिया। दिन का समय था। कैंदी काम में लगे थे, वाडर देख रहे थे, और जेलर महादय इधर उधर घूमकर निरीक्षण कर रहे थे। सड़सा एक कैदी, जिसे टाके के एक मामले में सजा मिली थी, जेलर की श्रावण पड़ा। उसके हाथ में एक छुरी थी। रमेश लपक कर उसमें लिपट गया। वह वाडर और कैंदी दौड़े। शोर हाने लगा। उस डाकू कैदी ने रमेश के हाथ, पैर और पीठ पर कई बार किए। फिर वह कानून में कर लिया गया। कई गहरं जखम लाकर, अचेत होकर रमेश गिर पड़ा। उसी दशा में वह तुरन्त अस्पताल पहुँचाया गया।

मरणासन अवस्था में कई दिनों तक रमेश अचेत पड़ा रहा। किन्तु उसका जीवन-दीपक अभी बुझा नहीं चाहता था। चेतना लौट आई। धीरे धीरे घायल भरने लगे, और वह अच्युत हाने लगा। जेलर नित्य कई बार उसे देखने आता था।

तिल्य की भाँति जब उस दिन जेलर साहब उसे देखने आये, तो उन्होंने कहा—“रमेश जानू! आपका एहसान में सभी नहीं भूल सकता। उस दिन आप मुझे न बचाते, तो मेरा काम तमाम हो जाता।”

“एहसान की इतना बड़ा बात नहीं है, जेलर साहब! उस समय जो कुछ मुझे उचित जान पड़ा, उही मैंने किया था।”

“अपनी जान सतरे में डालकर किसी दूसरे को बचाना हर आदमी का काम नहीं है। यह बर्गी कर सकता है जिसके विचार बहुत ऊँचे हों, दिलवाता है, जिसमें साहस हो।”

रमेश फिर मुहाम्मद हुए चुपचाप बैठा रहा। आत्म-गर्भ उसके हृदय में दिलारों मार रहा था, किन्तु उसकी छाया भी वह अपने चेहरे पर प्रकट नहीं होने देना चाहता था।

इन्तजाम हाना चारिण निर श्रादमी की ज़रूरत रफा होती रहे।  
 अमार उभा इन्तजाम हाना, ता मुझे ऐसी हरकत करने की ज़रूरत न  
 पड़ती, जो सरकार क रखात में ताबायज है। रोज़ी का नीड जरिया  
 मेरे पास न था, काम वही मिलता न था, मं लातार था। मं सुदुखी  
 कर सक्ता था लेकिन यह भी तो नाजायज कारवाइ हाती। दो नाचा  
 यज्ञ हरकत में से मुझे एफ करनी थी। जो हरकत मुझे डीर नैची,  
 वह मीने की। लेकिन म अपनी हरकत को ताबायज नहीं समकता।

निर सबूत पाउ के गवाहों के क्यात हुए। अभियुक्त ने कोई सफाई  
 नहीं दी। वकीलों को रहस हुर। अभियुक्त ने काइ नहीलानहीं किया  
 था। सरकार क खूब से उसकी श्रा से ता वकील या उम्मेने अदालत  
 से दया की प्रार्थना की।

किंतु बायाधीश महोदय न तो अभियुक्त ने जयान से शौर न  
 उसके नहील की दलीला से प्रभावित हुए। उसे रड़ी सज़ा देना ही  
 उन्होरे उचित समकत। स्पेश को टाइ यर सपरिभ्यस कारवायत का  
 दगड मिला। यह जेन भेन दिया गया।

× < ×

जेल में रमेश एक सच्चे, ईमानदार, मेहनती क्लेरी का तरह  
 जीवन व्यतीत करा लगा। जो शौर नितना काम उसे दिया जाता,  
 उसे वह अत्यंत परिश्रम तथा अपनी सम्पूर्ण योग्यता से सम्पादित  
 करता। नियति के निरुद्ध उसने हृदय में जो विद्रोह की मानना उठ  
 गयी हुई थी, वह अपनी निकटता त्याग कर, सरत होने लगी थी।  
 जेल के शिष्य में उसने जो कल्पनावें की थीं, वे पुण्यतया मिथ्या नहीं  
 थीं। यहाँ का बटार प्रशुशासन, दोषपूर्ण भोजन वख—सभी  
 बातें अवाञ्छनीय थीं। किन्तु, थोड़े ही दिनां म उसका व्यक्तित्व, मुक  
 कर, फैलकर, उठकर, उस वातावरण म जीवित रन्ने के योग्य बन  
 गया। वह असंतुष्ट न था, क्योंकि यहाँ बाहर कीसी बिनताएँ उसे  
 लग नहीं करती थीं।

बन्दी-गृह के नीरस, शुष्क वातावरण का चित्रण था, बाह्य सभार की सुमधुर नल्पनाएँ थीं, और थी घर की याद ।

कविता समाप्त करके, वह जेलर के कमरे में गया । जेलर ने मुस्क-राकर पूछा—“कहिए, रमेश नाबू ?”

“आपसे एक प्रार्थना करने के लिये आया हूँ ।”

“कहिए, कहिए !”

“झीने एक कविता लिखी है ।”

“बड़ी खुशी की बात है ।”

“उसे मैं एक मासिक-पत्र को भेजना चाहता हूँ ।”

“किस भाषा में है ?”

“हिन्दी में ।”

“उसमें राजनैतिक रंग तो नहीं है ?”

“निलजुल नहीं ।”

“तब ठीक है ।” आज की डाय तो जा चुकी । कल उसे भेज दीजिएगा ।”

“धन्यवाद ।”

दूसरे दिन कविता खाना हो गई । एक सप्ताह में जमान आ गया । पत्र के सम्पादक ने धन्यवाद-सहित कविता स्वीकार की, शीघ्र ही प्रकाशित करने का आश्वासन दिया था, और अन्य रचनाएँ भेजते रहने का अनुरोध किया था । रमेश खुशी से उछल पड़ा ।

वाक्य-रचना में वह नित्य सलग्न रहने लगा ।

×

×

×

हंसते खेलते कारावास की अवधि समाप्त हो गई । रमेश जेल में बाहर निकला । वह एक धर्मशाला में जा ठहरा । स्नान तथा भोजन के पश्चात् एक समाचार-पत्र खरीदकर वह एक निष्ठापन देगने लगा । एक बीमा कम्पनी को एक क्लर्क की प्राग्श्यकता था । उसी समय

“आपका दिमाग तो ज़रूरत तो यही है !”

“आपका दिमाग तो और तो सब कुछ यही मान है। मर्क एक चीज का अन्त ज़रूर है।”

“मिना चाज़ की ! पौराण रहलाइये।”

‘यहाँ इन तरह पड़े-गड़े तबीअत ऊबता है। प्रार दा-बन्ध पुस्तकें मिल जायें, तो शायद बड़े मजे में पढ़ जाया करे।’

“यामें क्या मुश्किल है ! अभी भोजराजा हूँ।”

जोकर मान्य रहे गए। प्रायः घट में एक यादर श्रमेरी और दिरी की वह पुस्तकें दे गया। बड़ा उमुषता से स्नेह उनको-बलने लगा। उन पुस्तकों में सुप्रसिद्ध प्रमेज फरि यादरन जी कवि-श्री का एक समूह था था। इसी पुस्तक में रमेश की तबीअत जम गई। मस्त होकर, झूम झूमकर पढ़ पढ़ने लगा। खन्ना की शरिता अतदृष्टि के सम्मुख प्रयाहित होने लगी। मन्नी से छलकने हुए भाव, मुन्दर-सूक्ष्म विचार, रंगीली-भादक कल्याणें उनके गुणा-व्ययित मनोबोध में दृश्य करने लगा। अपने कष्टों तथा अस्पताल के उस दुःखद याता यरण में ऊपर उठकर, वह स्वयं स्वप्नलोक में विचरण करने लगा।

दो मास में बिलकुल चंगा होकर, वह अस्पताल से निकला। नेलर की कृपा से उमे बहुत हलका बाम दिया जा रहा था। पठन, मनन, चिन्तन में ही उसका अधिकांश समय राती लगा। काप के प्रती उसे पहले से ही प्रेम था, अब वह दिन प्रति-दिन निगरी लगा।

एक दिन सहसा उसके मन में काव्य रचना की प्रेरणा हुई। उसकी कल्पनाशक्ति अपूर्व प्रेम् में अपने काय में सलम हो गई। भाव, विचार, शब्द वगैरे में उठ उठकर ज्ञानज्ञ पर उतरने के लिए मचलने लगे। पाउट्रेन पर और कासाज़ लार का विचरने के लिए बैठ गया।

दिन भर में एक सुन्दर, भावपूर्ण रचिता तैयार हो गई। उसमें बदीष्ट में जैसे हुए एक बन्नी की मना-व्यथा का हाशवार था।

नियुक्त कर दिया। उसकी खुशी का ठियाना था। दिन भर दफ्तर में मेहनत करने, और शाम-सवेरे साहित्य-सेवा में वह अपना समय व्यतीत करने लगा। वह स्वादिष्ट तथा स्वास्थ्यवद्धक भोजन करता था, अच्छे और साफ कपड़े पहिनाता था, मनोरंजन के निर्दाय साधनों से लाभ उठाता, किन्तु निष्प्रायत से चलता था।

उसके कठिन परिश्रम तथा धार्यता ने मीठ फल दिए। एक वर्ष के बाद ही वह सहायक मैनेजर के पद पर पहुँच गया। उसे अच्छा वेतन मिला लगा। बैंक में जमा की हुई रकम उसकी तेजी से बढ़ने लगी। तब उसने हीरालाल का पत्र लिया —

“प्रिय हीरा,

यह पत्र पाकर तुम्हें आश्चर्य होगा, शायद खुशी भी हो। अनेक कष्ट सहने के बाद अब मेरी दशा सुधरा है। बड़े मज्जे में हूँ। अपना हाल लिता।

तुम्हारा मित्र,  
रमेश”

चार दिन के बाद उसे यह उत्तर मिला —

“प्रिय रमेश,

तुम्हारा पत्र पाकर बड़ी खुशी हुई। तुम तो एकाएक ऐसे सायब हुए कि इतनी मुदत तक अपनी कोइ खबर ही न दी। हम सब बच्चे आश्चर्य में थे। यह बड़े सन्तोष का निषय है कि अब तुम इतनी अच्छी हालत में हो। मैं तो बड़ी मुसीबत में हूँ, भाइ! साल भर वर्ष क्षय-रोग में पीड़ित रहकर मेरी स्त्री चल बसी। उसके इलाज में मुझे बहुत खर्च करना पड़ा, और उसकी तीमारदारी में रहने के कारण मैं कुछ काम भी नहीं कर सका था। बज के बोझ से लदा हूँ। मेरी हालत बहुत खराब है।

तुम्हारा—  
हीरा”

घर्मशाला स निजलभर, यह उस कम्पनी के कार्यालय का ओर खाना हो गया ।

कम्पनी के दफ्तर म पहुँचकर, उसने इत्तला कराइ । तुन्त मुलाक़ात क लिए यह बुनाया गया । उसो मैजर के कमरे में प्रवेश किया । अयेज़ मैनेजर ने उसे सिर से पैर तक देखकर, कहा—“बल !”

“नौकरी के वास्ते आया हूँ ।”

“अब तक आप कहाँ काम करते थे ?”

“तीई साल पहले मैं एक कारखाने में काम कर चुका हूँ ।”

“इस बीच में क्या करते रहे ?”

“बेल म रद था, जनाव ।”

“किस जुम म सजा मिली थी ?”

“चोरी के पुर्म में ।”

“तुमने चोरी की थी ?”

“धानून नी परिमाया क अनुसार तो मैंने चोरी ही की थी, लेकिन ।”

“क्या चोरी की थी तुमने ?”

“नाम कहीं भिन्ता न था, पैसे, पास न थे, मेरी हालत बहुत खराब थी ।”

“अब तो कभी ऐसा काम नहीं करागे ?”

“नहीं ।”

“तुम्हारी स्पष्टवादिता से मैं बहुत खुश हुआ । आज ही से यहा काम करना शुरू कर दो । एक सप्ताह के बाद तुम्हारा काम देखकर मैं तय करूँगा कि तुम्हें रखूँ या नहा ।”

“धन्यवाद !”

उसी दिन से वह उस दफ्तर म काम करने लगा । एक सप्ताह के बाद उसक काम से खुश होकर मैनेजर ने उसे सन्तोषजनक वेतन पर

हीरा की आँतों भी डबडबा आरं। अचरुद्ध नष्ट से उसने कहा—  
 “ठीक रहते हो, रमेश ! उस समय तो मैं नहीं समझता था, लेकिन,  
 आज जब मेरी दशा भी वैसी ही खराब है, तो मैं समझ सकता हूँ कि  
 उस समय तुम्हारी दशा वैसी ही होगी ।

इसके बाद रमेश ने कलकत्ता पहुँचने और उसके बाद का सारा  
 हाल कह सुनाया । तब एक दीर्घ निश्वास रीचकर, हीरा ने कहा—  
 “मान-जीवन बढ़ा मित्रि है, रमेश ! न कया हो जायगा, हम कहा  
 से कहा पहुँच जायँगे, इसकी लेश-मान भी सूचना हमें पहले से नहा  
 मिलती ।

‘आगेवाली घटनाओं की सूचना यदि हमें पहले ही से मिल  
 जाया कर, तो नितना अच्छा हो !’

“कदाचित्त अच्छा हा, कदाचित्त बुरा भी !”

“ठीक कहते हो ।”

मौन होकर कुछ समय तक दोनों अपने-अपने विचारों में ग्राये  
 हुए बैठे रहे । फिर रमेश ने कहा—“अभी मुझे औरों क रूप भी  
 अदा करे हैं ।”

“इसकी चिन्ता न करो, रमेश ! तुम्हारे चले जाने के बाद ही मैंने  
 सनस रूप अदा कर दिए थे ।”

“हीरा ! तुम सचमुच हीरा हा !”



मद पत्र पाकर, रमेश ने हीरा को गान्धारी-सुख पर लिखा और उसके साथ ही १०००) का चेक भी भेज दिया।

इस मामलियत का समाप्त होना हीरा को बहुत ही पसन्द आया, और वह-गार दिनों के लिए उस आश्रम-पूर्वक सुखाना। उस, एक सप्ताह की छुट्टी लेकर रोहतास इलाक़ा-पर हीरा रवाना हो गया।

इलाहाबाद स्टेशन पर हीरा-गान्धारी उगड़ी प्रतीक्षा कर रहा था। दोनों मिल-प्रसन्न हो मिले। फिर हीरा को अपना घर दिखाने के लिये वहीं उठाया उसकी बड़ी खातिर की।

मौज-मौज उतरा-वै-मं आगम-सुख-पर-दाता-मित्र-आश्रम-स-रहे-दुष्ट-से। हीरा ने बुरा-सुख-पर-म-कहा—“रमेश! अगर-तुम-इस-समय-मेरी-सहायता-न-करते, तो-मैं-दिया-भिगा-हो-जाता।”

“भाई-सहायता-नहीं-की, हीरा, अपना-शुभ-सुख-दे।”

“शुभ-देना, भाई।”

“तुमने-मुझे-शुभ-दिया-था।-मैं-तुम्हारे-बाद-नहीं-हूँ।”

“जहाँ-तक-तुम्हारे-बाद-पढ़ता-हूँ, भाई-तुम्हारे-कभी-को-शुभ-नहीं-दिया-था।”

“तुम्हारे-बाद-क्या-किसी-सुख-से, हीरा।”

“मैं-नहीं-जानता।”

“भाई-सुख-क्या।”

“तुम्हारे।”

“हाँ, भाई।-क्या-तुम्हारे-सक-नहीं-हुआ-था।”

“शक-तो-तुम्हारे-जल्द-हुआ-था, और-इसी-लिए-मैं-तुम्हारे-घर-गया-था।-लेकिन-तुम्हारे-मिलन-के-बाद-मरा-शक-दूर-हो-गया-था।”

“अगर-उस-दिन-मैं-जारी-न-करता, तो-तुम्हारे-आत्म-दया-करती-पढ़ती।-रमेश-की-आसों-में-आसू-छलक-आए।”

तरफ चलने को बह भी दिया। गार चल पड़ी, और पंद्रह मिनट के बाद यूनिवर्सल के सामने पहुँच गई। माटरों की लम्बी कतारें डटी थीं। नगर का सुशिक्षित समाज एक महान् कला का रस लेने के लिए उमड़ था। कार से उतर कर मैं भी भीड़ में जा मिला। उड़ी कठिनाई से टिकट मिला। क्रिसा तरह मैं जा बैठा।

ठीक साढ़े छ, रजे सगीत छिड़ा, और मानो इन्द्रपुगी की एक अप्सरा मंच पर उतर कर नृत्य करने लगी। बिजली मानो गगन में घूँघट उठा-उठा कर हँसने लगी, चादनी मानो सरिता का लहरा से ग्रहणवेलियाँ करने लगी। तारे झिलमलाए, चाँद हँसा, उषा मुस्कराई, मध्याह्न तड़पा, राध्या गम्भीर हुई गोष्म ने अग्नि बपा की, पावस ने झनी लगाई, शरद ने शीत का लहरें दाड़ाई, उषन्त ने सौंदर्य माधुरी बिखेरी, आनन्द सागर की भाति उमड़ा, सौंदर्य ने चित्रमारा की, शक्ति मूर्त्तिमान हुई—यह सब देखा मैंने प्रेमलता के नृत्यों में, औरों ने चाहे जा कुछ देता हा। मैं कलापिद नहीं कि उसका निरूपण कर सकूँ, किन्तु एक साधारण दर्शक की हैतियत से कह सकता हूँ कि आनन्द की जैसी अनुभूति मुझे उस दिन हुई, वैसी लन्दन और पेरिस में प्रसिद्ध यूरायिनन नतकियों के सुन्दर नृत्यों से भी नहीं हुई। मैं भूल गया कि कौन हूँ, नहीं हूँ। और यही शायद प्रेमलता की सब से उड़ी सफलता थी।

जब कार्यक्रम समाप्त हुआ, और मैं हॉल से बाहर निकला, तो मेरे ऊपर एक अजीब नशा-सा छाया हुआ था। प्रमलता का चित्र मेरी आँखों में फिर रहा था, और मेरा दिल उसमें इस तरह उलझा हुआ था जैसे कभी उससे अलग न हो सकंगा। खोया हुआ-सा, ठगा हुआ-सा कार में बैठकर मैं घर की ओर रवाना हो गया।

अब राति बीत चुकी थी। और मैं अपने पुस्तकालय में एक आरामकुरसी पर लेटा हुआ, सिगरेट जलाता हुआ सोच रहा था कि

## दर्द

मर दिल म एक दर्द है, ना रफा नहां हो सक्ता, और जिसे मैं रफा नक्ता भा नहां चाहता। और है मेरे दिल म एक तरकीब, जा इट नही सक्ता, और जिसे मैं हटाता भी नहीं चाहता। उस दर्द म जो लज्जत है वह कभी किसी चीज में नहां मिली, और उस तरकीब में जा खूबसूरता है वह कभी नही नजर से उदा सुनरी। अपने निरानन्द जीवन के कफरीले पथ पर उहा दोना के सशरे में चल रहा हूँ। मेरे मित्र सममत हैं कि म एक हिन्दादिल आदमी हूँ, क्वाजि हूँसो हंसाने की कला में भी दक्षता प्राप्त कर ली है। लेकिन व यह नहीं जानते कि मरी हिन्दादिली के परदे म एक आग जल गयी है, ना कभी बुझ गयी सक्ती, और जिसे मैं बुझाना भी नहां चाहता। कितने दिन चल सकेगा इस निरी जीवन का व्यापार उसके बुझ जाने पर ?

उस दिन दो ज़रूरी मुकदमा म रहस करने ने राद में सध्या समय धर लौटा, तां मरा शरीर शिथिल हो गया था, चित्त अशान्त था। चाय पाने के राद कार पर सगार हांटर में मर के उलिये निकल गया। थड़ी देर तक निश्चेश्य भाव से इधर उधर चक्कर लगाता रहा। शिथिलता कुछ दूर ही गई, चित्त कुछ शान्त हो गया।

रिपन गड पर मेरी कार मस्ती से चली जा रही थी। सहसा मेरा दृष्टि सामने के चौराहे के समीप एक वृक्ष पर टँगे हुये एक बड़े पोस्टर पर जम गई। तुान्त मोटर रुकवा कर मैं उस पढ़ने लगा। शांत हुआ कि यूनिवर्सल थिएटर में महान् नतनी मिस प्रमलता का कलापूर्ण नृत्य उपयुक्त संगीत के साथ प्रति दिन सायनाल साडे छः बने होता है। मेरे मन म देखाने की इच्छा उठी, और मने तुरन्त ड्राइवर से उसी

उतरकर मैं आगे गला । जीवननाथ ने हाथफकर मेरा स्वागत किया ।  
हँस कर, हाथ मिलाकर, उद्ये कहा—“बहुत अच्छा किया, आ गए ।  
तुम न आते, तो मजा किगकिया हो जाता ।”

“आता क्या न, यार !”

“चला बैठो ।”

इतने में एक दूसरी कार आ गई । जीवन उसकी ओर बढ़ा । मैं  
लॉन की ओर चला । घास के हरे फर्रा पर सोफे, मेजें और जुरसियाँ  
कायदे से साथ सजी हुई थीं । वर्दीपोश सेवक इधर-उधर अदन से  
खड़े हुए थे । मैं एक सोफे पर बैठ गया । एक सेजर ने तुरन्त सिगरेट  
पेश किया । सिगरेट जलाकर मैं अपने विचारां में डूब गया ।

महमान बराबर आत गए । देखते देखते सारा लॉन सुशिक्षित,  
स्त्रियों और पुरुषों से भर गया । ठीक साढे चार बजे प्रेमलता सदल  
आ पहुँची । जीवननाथ तथा कुछ अन्य व्यक्तियों ने बढ़कर स्वागत  
किया । मैं भी उन लोगों में था । प्रमलता लॉन पर लिवा लाई गई ।  
अन्य अतिथियों का उससे परिचय कराया जाने लगा । मेरा इम्बर भा  
आया । मुस्कराकर, हाथ मिलाकर प्रेमलता ने कहा—“आपसे मिलकर  
मुझे बड़ी प्रसन्ता हुई ।”

“मुझे भी बड़ी प्रसन्नता हुई आपसे मिलकर, ” किञ्चित संकोच  
पूर्ण स्वर में मैंने उत्तर दिया ।

शब्द तो वही थे जो प्रेमलता ने अन्य लोगों से कहे थे, किन्तु  
मुझे उसके स्वर में एक विशेष कम्पन का आभास मिला । सम्भव है,  
यह कल्पना-जनित भ्रम ही रहा हो लेकिन बाद की घटनाओं से मुझे  
तो यही प्रतात होता है कि मेरी यह धारणा सत्य था । आनन्द से भरा  
हृदय गच उठा, किन्तु दूसरे ही क्षण मैं व्यग्र हो उठा, अपना अनु  
मान की सत्यता असत्यता का जाँच करने के लिये ।

सब बैठ गये । मुझ भी उची मज पर स्थान मिला, जिस पर प्रेम  
लता बैठी हुई थी । जलपान शुरू हुआ । वात्तालाप भी होने लगा ।

भरा हुआ पढ़ना लिखना, पत्र कमाना, गृहस्थी धारणा क्या करने नहीं गया ? भरत चारन में क्या एक ऐसा समाज नहीं, जिसकी पूर्ति नहीं हुई ?

प्रेमलता से व्यक्तिगत परिचय प्राप्त करने के लिये मैं उत्सुक हो उठा । कैसे मिलूँ उसका ? फादर एना उपास नहीं सुनता था मुझे प्यार आ जाता ।

×

×

×

सबसे जब मैं साहज उठा, तो आठ बजे चुके थे । तभीअन कुछ मारी थी । रात की बातों का विचारलेता, जो स्वप्न में भी लिख हुआ था, इस समय भी मारी था ।

पुस्तकालय में जाकर, मैं एक आरामखुरखी पर लटककर, गिगरेट पीने लगा । एक सप्ताह ने उस दिन का समाचार-पत्र शीघ्र एक बड़ा लिफाफा भर सामने पड़ा हुआ छापी भज पर रग दिया । मुन्त लिफाफा खोलकर मैंने दरवा और प्रसन्नता से उल्लस पड़ा । मिस् प्रेमलता का सम्मान में मित्रवर जानानाथ शीघ्र ने उली दिन सप्ताह के समस्त एक 'एन नेम' का आयोजन किया था । उगामें सम्मिलित होने का नियम यह निमन्त्रण था । छप हुये बाढ़ के पुरत पर जीवा ने अपने हाथ से इतना और लिखा दिया था—“जरूर आता । न आयागे, तो माफ न करूँगा ।” इस ताकीद की क्या जरूरत थी ? इसके बगैर क्या मैं न जाता ? जरूर जाता, हजार काम छोड़कर जाता ।

उस दिन भर तीस मुसदम थे । दो को मुलतनी करा कर और किन्नी तरफ एक की परवा करके, तीन बजे मैं पर लौट आया, और दायत में शरीर हाथ की तैयारी करत लगा ।

ठाक चार बजे सज्जधकर मैं जीवननाथ के घर की ओर खाला हो गया । पन्द्रह मिनट में मेरी कार निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गई । जीवन का निवास स्थान बड़ी सुन्दरता से सजाया गया था । कार से

पाटां समाप्त हा गई। सब लोग उठ खड़े हुये। मैं प्रेमलता के बिलकुल समीप पहुँच गया। न जाने कैसे, उसका हैंड-बैग उसने हाथ से गिर गया। तुरंत झुककर, उठाकर मैंने उसे दे दिया।

‘धन्यवाद!’ प्रमलता ने कहा—“अगर आपसे फिर भेंट हो सके, तो मुझे बेहद खुशी हांगी।”

“आपसे फिर मिलने का अवसर पाकर मैं अपने को बड़ा भाग्यवान मानूँगा। किस समय मुलाकात हो सकती है आपसे?”

“तीसरे पहर मुझे फुर्लत रहती है।”

“बेहतर है, नल ही टाजिर होऊँगा।”

हवा के घाड़े पर सवार होकर मैं नभ मण्डल की सैर करने लगा। सामने आ उपस्थित हुआ सौंदर्य का एक अति मनोरम प्रदेश। स्वागत करने लगी आशाएँ पग-पग पर। और जीवन एक नये साँचे में ढल कर पूरुणता के निकट पहुँच जाने के लिए आतुर हो उठा।

×

×

×

दूसरे दिन ठीक दो बजे मैं रिलायस होटल पहुँचा। एक सेवक से मैंने अपना कार्ट भेजवाया। धापम आकर वह मुझे एक मुसज्जित कमरे में लिवा ले गया। एक आरामकुरसी पर बैठकर मैं बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगा। सडसा दरवाजे का परदा उठा, और प्रमलता मुस्कराती हुई प्रदर आई। तुरन्त उठकर मैंने नमस्कार किया। उत्तर देकर वह मेरे समीप एक दूसरी आरामकुरसी पर बैठ गई।

“मेरे इस समय आने से आपका किसी तरह की असुविधा तो नहीं हुई?”

“जी नहीं। लेकिन यद प्रश्न क्या? क्या केवल शिष्टाचार के कारण?”

मैं मुन्कराने लगा। कोई उपयुक्त उत्तर मुझे नहीं मूला।

“अनुमिषा मुझे क्या होने लगी। जब मैंने स्वयं आपको बुलाया था।”

“भाफ की निष्ठा !” मैं धरमार कड़ा—“भरा मतलब यह था कि शायद आप आराम करती रही हो, और मेरे पास म उमम रालन पड़ा हो।”

“आप इतमीनात करें। दिन के समय मैं सोने की आदा नहीं हूँ, और मेरा ख्याल है कि इन समय यहाँ बैठना मे मुझे किसी तरह का था तकलीफ नहीं हो रहा है।”

मैं निश्चित हो गया। ता यहाँ उस कृपिता के आवरण की आवरणता नहीं, जिसकी आठ मं हमारे आधुनिक समाज की सत्यता पलता पलती है। उसका महारा लन का आदी तो मैं अवश्य हो गया हूँ, लेकिन यह बात नहीं कि मुझे उससे प्रेम है। उससे अरराभावि का जा है।

“मैं तिलकुल स्वतंत्र हूँ।” प्रमला ने कहा—“मेरी इच्छाओं अनिच्छाओं पर किसी का जरा भी नियन्त्रण नहीं। इसलिए कल जब मुझे इच्छा हुई कि आपसे फिर भेंट हो, तो आपका निमित्त पर देना में मुझ जरा भी दिक्कत नहीं हुई। जानत है, मुझे यह इच्छा क्या हुई थी।”

“नहीं।”

“इसलिए कि मुझे ऐसा जान पड़ा था कि जैसे आप मुझसे कुछ कहना चाहते हैं, लेकिन कह नहीं पाते। सच है न यह बात ?”

“तिलकुल सच।”

“क्या कहना चाहते थे आप ?”

“जा कुछ मैं कहना चाहता था, वह उससे भिन्न नहीं था जा और लोग कह रहे थे। शब्द मेरे अवरण भिन्न होते।”

“यानी, आप भी मेरी तारीफ करना चाहते थे।”

“बेराब !”

“किसी का अपनी तारीफ बुरी नहीं लगती, महेन्द्र बाबू ! मैं भी अपवाद नहीं हूँ । अपनी योग्यताओं से परिचित हूँ, और जानती हूँ कि नृत्य-कला के विकास के लिए जो कुछ कर रही हूँ वह नगण्य नहीं है । लेकिन कल मेरी जा प्रशंसा की गई थी, उसे मैं साधारण शिष्टाचार में अधिक नहीं समझती । उसमें अनावश्यक कृत्रिमता की ध्वनि थी । मेरी यह आलोचना आपके लिए नहीं है, क्योंकि आपके शब्द मुझे सुनने का नहीं मिले ।”

“मेरे शब्दों में शायद कुछ प्रतिशयोक्ति तो जरूर होती, लेकिन निश्वास का लिए, उसमें कृत्रिमता नहीं होती ।”

“अनिश्चय करने का कोई कारण नहीं है । आप बकील तो जरूर हैं, लेकिन मेरा खयाल है कि अगर आप चाहें तो सचाई से काम ले सकते हैं ।”

“धन्यवाद ।”

“चाय पीलिएगा ।”

“कहाँ जरूरत तो नहीं है ।”

“तकल्लुफ तो नहीं कर रहे हैं ?”

“निलकुल नहीं । तकल्लुफ की गुणाइश ही अब कहाँ रह गई है ?”

“तब ठीक ।”

म चुप रहा ।

“कहाँ घूमना चाहती हूँ । थोड़ी-सी खुली हवा की जरूरत मालूम हो रहा है । यत्न भी काफी है ।”

“बनिए, कार बाहर मौजूद है ।”

“अभी आती हूँ ।”

यह चला गइ उठकर, और मैं खाने लगा उसी की बात । कला की जो मूर्ति खल म उतरती मंच पर, यह कितनी भिन्न है इस प्रेमचता



से। वह तो हृ प्रराग की एक रत्ना "ग पाइ" में आ नहीं सकी। गक्ति  
 यह ह दाइ "ग" की एक शब्दों मार्त, जो गिकर से गिकट धारण ग  
 रही है, और "ग" की उकी यह शिवा रहने की नहीं। किन्तु क्या मैं  
 संकना जाता हूँ उत ? नहीं, हीन नहीं। फिर यह प्ररा ही क्या ?  
 यह तो अपने धर्म, धर्म से निरंतर ही बनाना चाहती है मुझे। और  
 सायद यही ग रहा है, जो मैं गइया ग और चाहता हूँ। फिर यह  
 हलनीनी पदराइट क्या उठ गइी हूँ है ग में ? निर्धन धन चाहता  
 है, लेकिन एकएक धन समन पानर गरम जाता है। सम्भव है यही  
 बात हा, और सम्भव है उसकी "इ" कहीं और भी दूर पैली हा।

तयार हाकर यह आ गइ। मैं उठ गइा हुआ।

“गला भाव ?”

“चिनिये।”

बाहर जाकर हम कार में बंठ गए। अपने स्थान पर बैठकर  
 शापर ने पूछा—कहाँ चलो, हुजर ?

“कहाँ चलिएगा ?”

“कहीं भी।”

“बाँध की तरफ चलो।”

“बहुत श्रच्छा।”

कार हवा से गते बन लगी।

एक घण्टे के बाद। गगा के बह पर एक डांगी मन्द गति  
 से चल रही थी। और उस नौगी पर प्रेमलता मेरी गल  
 म बैठी हुई थी। आकाश म सफेद बादलों के टुकड़े ढेर रहे थे।  
 सुदूर इनां की पतियोँ धीरे धीरे गिंसकती दृष्टिगांवर हो रही  
 थी। गिंसकियोँ जल को छ-सूकर उड़ रही थीं। बगुले ध्यानस्थ  
 खड़े हुए थे। अँडवार नामक छोटी-छोटी भइलियोँ जल पर  
 उड़ती हुई चल रही थीं। शतिल समीर के मधुर म्ने शरीर

में सुदगुदा पैदा कर रहे थे। एक अजीब मस्ती था, जो समस्त वातावरण में धिरकती जान पड़ती थी। उसी मस्ती से पिरा हुआ, दबा हुआ मैं साब रहा था उस उद्विग्नता की बात, जो रह-रहकर चुभ रही थी मेरे मन में फटि की तरह। उसे रतने के लिये क्या मेरे पास स्थान नहीं ? किन्तु अभी कल ही तो मुझे रोष हुआ था एक विचित्र सूचना का ?

“मइन्द्र नाबू !” प्रेमवता ने कहा, “न जाने क्या, आपके ऊपर मेरा निष्काम प्रतिपल दृष्ट होता जा रहा है।”

“इसे मैं अपना अमीम साहाय्य मानता हूँ।”

“और इस में मरणा नशा, प्रात्सादन देना चाहती हूँ, इसलिए लेकिन पहले एक बात बतलाइये। आप कोई ऐसी बात तो न करेंगे, जिसका कारण मुझे बाद में पछतावा हो ?”

“अगर मेरे वचन का कोई मूल्य हो, तो यह कहने का तैयार हूँ कि मैं कोई ऐसा काम न करूँगा, जिसे आप अनुचित कह सकें या कोई भी अनुचित कह सके।”

“बस, इतना काफी है। अब मैं आपसे अपना सारा हाल कहूँगी।”

“बस कहिये, मैं उत्सुक हूँ।”

“सबसे नीचे राटिका में एक मस्त तितली की तरह घूम रही हूँ। लेकिन मेरा मन दुग्री है, और उसमें एक विचित्र स्थापन है।”

“मुझे बड़ा अफसोस हुआ यह सुनकर।”

एक निश्वास साँचकर वह चुप हो गई, ऐसा जान पड़ा, जैसे मन में उठे हुये किसी भाव का दारोने की कोशिश कर रही हो। फिर बोली—

“बड़ी भयानक फटिनाइयों के बीच चलकर उस स्थान पर पहुँची हूँ, जहाँ आन मौजूद हूँ। नृत्य-बलाक प्रति अपने प्रेम के कारण ही, मैं उभे नहीं अपनाया है। प्रेम के अनिश्चित आवश्यकता का भा प्रश्न था। मेरे पिता एक सरकारी दफ्तर में एक साधारण क्लर्क थे, और

उनके ऊपर एक बड़ी गृहस्थी का भार था। स्वयं, पत्नी, एक विधवा रहिन, दो लड़कें और चार लड़कियाँ—इनने प्राणी धरत उनके परिवार में। येतन बहुत मामूली था। काम पत्नी कठिनात् से चलता था। सबसे बड़ी लड़की में ही थी। मुझे शिक्षा दी जा रहा थी उस विचार से कि शायद बाद में दहेज से बचत हो जाय। लेकिन जब मैं सयानी हुई, तो यह विचार भ्रम सिद्ध हुआ। मेरे लिए घर की तलाश में पिताजी जहाँ-जहाँ जाते, दहेज की रकम मुनकर हैरान हो जाते और निराश होकर लौटते। उनकी लड़की सुन्दर है, सुशिक्षित है—इस बात में किसीने दिलचस्पी जाहिर नहीं की। निसा का उनसे जरा भी सद्भाव नहीं हुआ। माता पिता दोनों हर समय उदास रहते, और अपने असीम दुभाग्य का रोग रोते। यह घर मैं देवता-मुनती और एकान्त में चुपचाप आँसू बहाती। अक्सर जी में आता कि आत्म हत्या करने लूँ। लेकिन मने मुन रखा था कि उस जन्म में आत्म हत्या करने से अगले जन्म में मृत बनना पड़ता है। चुड़ैल बनने का विचार से मैं कर्षि उठती और मेरे साहस का अन्त हो जाता। आखिर बहुत आचने विचारने के बाद मैंने अपना माग निश्चित कर लिया।

“एक दिन साहस करके मैंने अपनी माता से यह दिया कि मैं शादी न करूँगी, मेरे कारण पिता की परेशानी न उठावें, और मैं उन्हें आश्वासन देती हूँ कि कोई ऐसा काम न करूँगी, जिससे उनका नाम कलकित हो। माताजी ने सारे घर मुझे समझाया कि उनके मूल में ऐसा अनरीति काम नहीं हुआ। पिताजी बहुत नाराज हुए। लेकिन मैं अती निश्चय पर अटल रही मेरे घर के पास ही मेरी एक सखी रहना थी, जो मेरे साथ पढ़ता भी थी। प्रभा के रिज बड़े अभाग थे, और बड़े लाड़ प्यार से उसका पालन पोषण कर रहे थे। प्रभा से मेरी बड़ी घनिष्टता थी, और प्रायः पित्य में उसके घर जाती थी।

“प्रभा को एकाएक रृत्य सीखने का शौक हुआ। उसके पिता ने एक सुभाव्य शिक्षक मुझसे कर दिया। प्रभा जो कुछ अपने मास्टर से सीखती, वह मुझे दिखा देती। बड़ी सरलता से मैं सीखती जाती। प्रभा जो कुछ सीखती उसे घंटों अभ्यास करने पर भी ठीक ठीक श्रदा न कर पाती, लेकिन मैं जरा देर के अभ्यास के बाद ही इतने ठीक ढंग से श्रदा कर देती कि वह दग रह जाती। बात यह थी कि मुझमें स्वाभाविक प्रतिभा थी जो इल्फा-खा महारा पाकर निश्चित हाती जा रही थी।

“एक बार प्रभा के बहुत निद करने पर मुझे उसके मास्टर साहब के सामने नाचना पड़ा, वह बड़े प्रसन्न हुए। प्रभा ने अपने पिता से मेरी सिफारिश की और उसकी इच्छा अनुसार उन्होंने मास्टर साहब को मुझे भी शिक्षा देने का आदेश दे दिया। तब, मास्टर साहब मुझे भी नियमित रूप से शिक्षा देने लगे। दिन प्रति दिन मैं उन्नति करती गई। मेरे पिता को खबर हुई, तो उन्होंने आपत्ति की। पिताजी पुरातन सस्कारों में तो अवश्य पले थे, किन्तु आधुनिक सभ्यता की प्रगति से अनभिज्ञ न थे। थोड़ी-सी बहस के बाद वह मान गये। अनेक सार्वजनिक प्रतियोगिताओं में मने भाग लिया और हर बार सर्व प्रथम रही। मुक्त कठ से लार्गा ने मेरी प्रशंसा की। मेरी ख्याति बढ़ती गई, और लोग मुझे प्रथम श्रेणी की नर्तकी मानने लगे। तब अनेक कलाकार मेरे निकट एकत्र हुए, और इस बात की चर्चा छिड़ी कि मेरी कला का प्रदर्शन समग्र देश में होता चााहिए। एक थापना तैयार की गई। प्रभा के पिता ने इस योजना का खुलें दिल से समर्थन दिया और आवश्यक धन भी दे दिया। इस तरह हमारी कम्पनी बन गई। मेरी कम्पनी शीघ्र ही चल निकली, और आ— उसकी जा स्थिति है उससे आप भली भाँति परिचित हैं। मेरी बर्दिनें और मरे भाई पूरी निश्चिन्तता से विद्याभ्ययन कर रहे हैं। पिताजी अब भी वही पुराने कारक हैं,

उनके ऊपर एक बड़ी गृहस्थी का भार था। स्वयं, पत्नी, एक विधवा बहिन, दो लड़के और चार लड़कियाँ—इतने प्राणी घ-उनके परिवार में। वेतन बहुत मामूली था। काम बड़ी कठिनाई से चलता था। सबसे बड़ी लड़की में ही भी। मुझे शिक्षा दी जा रही थी इस विचार से कि शायद बाद में दहेज से बचत हो जाय। लेकिन जब मैं स्यानी हुआ, तो यह विचार भ्रम सिद्ध हुआ। मेरे लिए घर की तलाश में पिताजी जहाँ कहीं जाते, दहेज की रकम मुनकर हारन हा जाते और निराश होकर लौटते। उनकी लड़की सुंदर है, सुशिक्षित है—इस बात में किसीने दिलचस्पी जाहिर नहीं की। निहाय वो उनसे जरा भी सन्तुष्टि नहीं हुई। माता पिता दोनों हर समय उदाम रहते, और अपने असीम दुःसाध्य का रोना रोने। यह घर मैं देखती-मुनती और एगल में चुपचाप आँसू बहाती। अक्सर भी मैं आता कि आत्म हत्या कर लूँ। लेकिन मैंने मुन रखा था कि इस जन्म में आत्म हत्या करने से अगले जन्म में भूत बनना पड़ता है। चुड़ैल बनने का विचार से मैं काप उठती और भर साहस का अन्न हो जाता। आखिर बहुत साचने विचारने के बाद मैंने अपना माग निश्चित कर लिया।

“एक दिन साहस करके मैंने अपनी भगता से यह दिया कि मैं शायद न कहूँगी, मेरे कारण पिता जो परेशानी न उठावें, और मैं उन्हें आश्वासन देती हूँ कि मैं ऐसा काम न कहूँगी, जिससे उनका नाम नलकित हा। माताजी ने सारे कर मुझे समझाया कि उनके कुल में ऐसी अनगति नभी नहीं हुई। पिताजी बहुत नापान हुए। लेकिन मैं अपने निश्चय पर अटल रही मेरे घर के पास ही मरी एक कपटी रहती थी, जो मेरे साथ पत्नी भी थी। प्रभा का पिता बड़े अमीर था, और बड़े लाड़ प्यारसे उसका पालन पोषण कर रहे थे। प्रभा से मेरी बड़ी घनिष्ठता थी, और प्रायः नित्य मैं उसके घर जाता थी।

“प्रभा का एनाएन नृत्य सीखने का शौक हुआ। माँके पिता ने एक सुयोग्य शिक्षक मुफरर कर दिया। प्रभा जो कुछ अपने मास्टर से सीखती, वह मुझे सिखा देती। बड़ी रागलता से ही सीखती जाती। प्रभा जो कुछ सीखती उसे घंटा अभ्यास करने पर भी ठीक ठीक अंदा न कर पाती, लेकिन मैं जरा देर के अभ्यास में बाद ही इतने ठीक ढंग से अंदा कर देती कि वह दंग रह जाती। भाग यह थी कि मुझमें स्वाभाविक प्रतिभा थी जो हल्का-सा सहारा पाकर विकसित होती जा रही थी।

“एक बार प्रभा के प्रवृत्त जिद करने पर मुझे जगद साहाय के सामने नाचना पड़ा, यह बड़े प्रसन्न हुए। प्रभा अपने पिता से मेरी सिफारिश की और उसकी इच्छा-प्रकार व दाने मात साहाय का मुझे भाँ शिखा देने का आदेश दे दिया। तब, मास्टर का मुझ भी नियमित रूप से शिक्षा देने लगे। दिन प्रति दिन, मैं रूढ़ करती गई। मेरे पिता को खबर हुई, तो उन्होंने आपत्ति की। किन्तु पुरातन संस्कारों में तो अवश्य पहले थे, किन्तु आधुनिक संस्कृत प्रगति से अनभिज्ञ थे। थोड़ी-सी सहय के बाद यह मानने लगे कि सार्वजनिक प्रतियोगिताओं में भाग लिया और हर बार जीत रही। मुझ वृत्त स लागाने मेरी प्रशंसा की। मेरी प्रशंसा और लोग मुझे प्रथम श्रेणी की नर्तकी मानने लगे। तब प्रभा के कारण मेरे निकट एकत्र हुए, और इस बात की वृत्त प्रकाश का प्रदर्शन समग्र देश में होता चाहे प्रदर्शन ही गई। प्रभा के पिता ने इस यात्रा का मुझे दिखाने आवश्यक था भी दे दिया। इस तरह हमारी कम्पनी शीघ्र ही चल निकली, और आप भवती भाँति परिचित हैं। मेरी बहिन से विद्याभ्यसन कर रहे हैं। पिताजी अब

लेकिन अब उनका नाम बहुत हलका हो गया है, क्योंकि मैं प्रति मास उनके पास एक अच्छी रकम भेज देती हूँ। मेरा समस्त परिवार मेरे ऊपर गर्व करता है। मुझे भी अपने ऊपर गर्व है, मगर अभिमान इस बात पर कि मैंने अपने पूरे पिता के नाम का किसी तरह फलरित नहीं किया।”

“सचमुच आपका बड़े कष्ट भेना पड़े। यह सारा उठिठारिया का रगतल ना है ही। किंतु वही व्यक्ति कठिनायियों पर विजय प्राप्त करता है, जो उनसे डटकर लड़ता है। और मुझे इस बात की खुशी है कि इसा डटकर लड़ने की पदौलत विनय आप अपने आगे चल रही है।”

“मैं जानती हूँ कि विजय आज मेरे साथ है। फिर भी मैं जाने क्या मेरे मन में एक सूनापन है, एक खटका है। और कभी-कभी तो मुझे ऐसा आसका शो लगती है कि यह विविध अज्ञान दुःख जीवन के अन्त तक मेरे साथ रहेगा।”

उसके ये शब्द सुनकर मैं खड़ा उठे। और ऐसा जान पड़ा जैसे उनकी ध्वनि के भार से समस्त वायुमंडल एकाएक भारी हो उठा। मेरा मन भी भारी हो गया। जीवन और उसका समस्त व्यापार निरधक प्रतीत होने लगा। सचमुच यह सारा जगत, यह सारा जीवन-आल एक महान् विडम्बना ही तो है।

सहसा वह हँस पड़ा। निविड अधकार में मानो निजली चमक उठी। मुँहकर मन उसकी आर देखा। मुस्कराने उठने भी देखा मेरी ओर, और उसकी आँखों में नुराना मुता दिया मुझे उसकी हँसी का भेद। हाँ, यही तो है एक सहारा जिसे पकड़ कर मानव चलता जाता है जीवन के कष्टमहासागर पर।

“आ, पाच नन गण।” उसने अपनी घड़ी देखाकर कहा—  
“अब वापस चलना चाहिए।”

“अच्छी बात है। माँजी !”

“सरफार !”

“नाम सिनारे लगाओ !”

“रहुत अच्छा !”

और हमारी डोंगी तट की ओर चल पड़ी।

×

×

×

उसीके साथ मैं थियेटर पहुँचा। यह अपने माथियाँ से जा मिली, और मैं अब्बल दरजे की प्रथम पक्ति में बैठ गया।

ठीक समय पर तृतीय आरम्भ हुआ। उसकी फ्ला पहुँच गई अपनी परानाष्टा पर। वह नृत्य कर रही थी पूरी तन्मयता से। किन्तु रह-रह कर मुझे ऐसा जान पड़ता जैसे यह भरी आर दब रही है, फूल मेरे लिए तृण कर रही है। क्या यह तरा भ्रम था, मेरी मूर्खता थी, भाग्य-प्रदंभाव था ?

प्राथम समाप्त हो गया। दर्शकों की भारी भीड़ बाहर उमड़ पड़ी। मैं भी बाहर निकला खाया हुआ-खा, मन मुग्ध-सा। प्रत्येक व्यक्ति की जवान पर प्रेमलता की तारीफ थी।

भीड़ छुट गई। अपनी कार के पास जाकर मैं अर्द्ध-चेतना की दशा में टहलने लगा। अपनी दल पे साथ यह बाहर आई। मुझे देखकर, दल से अलग होकर, लपक कर वह मेरे पास आ पहुँची।

“बधाई !”

“धन्यवाद !”

“आज कल से क्या कर रहा ?”

“जानती हूँ, और इसका कारण मैं भी अतिरिक्ति नहीं हूँ।”

मेरी ही कार में वह बैठ गई। मैं भी उसकी बाल सजावट में।

“कहाँ चलो, कूपर !”

“गिम्पयेंस होटल।”



“बहुत अच्छा, हुजूर।”

कार चल पड़ी।

“क्या है वह कारण ?”

“कारण ! आप हैं वह कारण।”

रात आ गई आनन्द की। उछलने लगा मेरा हृदय। और ऐसा जान पड़ा मुझे, जैसे इतना आनन्द मैं अपने पास रख न सकूँगा, हजम न कर सकूँगा। सहसा एक मूर्ति मेरे सामने आई और गायब हो गई। मैं सड़म गया। आनन्द दूर खिसकने लगा। वह चुप थी। मैं भी चुप था। वह मुझे तौल रही थी। मैं भी अपने ही को तौल रहा था।

हाटल आ गया। कार रुकी। वह उतर पड़ी। मैं भी उतर पड़ा।

“अब इजाजत दीजिए।”

“रुकिए। खाना खाकर जाइयेगा।”

“इस समय माफ कीजिये।”

“नहीं, साहब, आपना रुकना पड़ेगा।”

“अच्छी बात है।”

प्रमलता और उसके दलवालों के साथ ही मैंने भोजन किया। भोजना के बाद वह लॉन की ओर चली। मैं भी साथ था। एकाएक रुककर उसने कहा—“जानते हैं, मन आपका इस समय क्या रोका था ?”

“नहीं।”

“एक रात आपसे कहना चाहती थी।”

“क्या है वह रात ?”

“मैं चाहती हूँ कि आप हमेशा मेरे साथ रहें, और इसके लिए मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ।”

आ गइ मजिल सामने । लेकिन मेरे पैर उम्बड़ गए । हृदय मचला, और मुझे उत्कट इच्छा हुई कि उसे गद्दु-याश म बाँध लूँ । लेकिन म मूर्त्तवत् खड़ा रह गया ।

“मेरे लिए यह असाम सौभाग्य की बात होगी,” किसी तरह मैंने कहा—“लेकिन ।”

“लेकिन क्या ?”

म चुप रहा ।

“इस समय आप जवाब नहीं दे सकेंगे ? अच्छा कल सही । आइयेगा न कल ?”

“जरूर आऊँगा ।”

“नमस्कार !”

“नमस्कार !”

वह तजी से चली गई । मैं धीरे धीरे कार की ओर बढ़ा ।

नहीं कह सकता कि उस तरह म घर पहुँचा । घर के पोर्टिका म ज्या ही नार रुमी कमला गइर निकल आई । किसी तरह कार से उतर कर मैं सानिया पर चढ़ने लगा । वह समीप आ गई ।

“इतनी देर तक कहीं रह गए ?”

“एक मित्र से मिलन चला गया था ।” मिर मुझसे हुए मने उत्तर दिया ।

“खाना मर्राब हुआ ना रहा है । चलो ना लो ।”

“नहीं खाऊँगा । एक दावत म शरीफ हानर था रहा हूँ ।”

“कहकर गए होते ता क्या घुलाई हा जानी ?”

काई उत्तर नहीं दिया मने । साध पुस्तकालय में जा पहुँचा, और रोशनी का रास्ता दाखर एक आरामकुर्सी पर लेट गया । ओह ! यह क्या घर आला मने ? क्या मैं शरीक हुआ एक एसे खेल में जिसम भाग लेना उचित नहीं था ? क्या सबमुच अनुचित था भाग लेना ?

क्या चित्र का एक दूसरा पक्ष नहीं है ? कमला और दा बच्चे । कमला दुःखान्तरण है, और मैं उसका सम्मान करता हूँ । किन्तु मुझे उससे यह चीज नहीं मिली, पिताजी पिप मरा हृदय एक पुस्तक से तड़प रहा है । श्याम वह चीज मुझ पर दूरी जगह गिन रही है । तो क्या मैं उस दुःख दूँ ? उचित है उस दुःख देना ? नहीं, नहीं । कमला और बच्चा के लिए बहुत काम पैदा कर चुका हूँ । उन्हें त्यागकर चुपचाप चला जा सकता हूँ, और इससे उन्हें कोई बाधा पड़ेगा । कमला चतुर स्त्री है, और पक्ष्य धन छाड़ जाऊँगा उसके लिए । किन्तु इस तरह स्त्री और बच्चा का त्याग देना क्या उचित है ? नहीं, नहीं । यह भी अनुचित है, यह भी अनुचित है । तब उचित क्या है ? आह ! कैसी निश्चिन्त समस्या है !

रात भर म सो नहीं सका । कभी खड़ा, कभी बैठता, कभी टहलता ।

सबसे साढ़े प्राठ बजे मैं फिर रिलायस हाटल पहुँच गया । उस समय प्रमलता अग्नाथ कर रही थी । एक कमरे में बैठकर मैं उसकी प्रतीक्षा करने लगा । प्राथ घट के बाद वह प्राह । मैं उठ खड़ा हुआ । मरा और ध्यान से देखकर उसने कहा—“रात भर नींद नहीं आइ ?”

“नहीं ।”

“उत्तर देते आये हैं इस समय ?”

“हाँ ।”

“मैं उत्सुक हूँ सुनने के लिये ।”

“मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, प्रमलता, और तुम्हें सब कुछ अर्पण कर देने का तैयार हूँ ।”

“लेकिन ?”

“एक बात है ।”

‘क्या है वह ?’

“मैं विवाहित हूँ। मेरी स्त्री जीवित है, और मेरे दो बच्चे भी हैं।”

प्रमलता गिर पड़ी एक कुर्सी पर, और ऐसा जाग पड़ा जैसे वह बेहोश हो जायगी। लेकिन वह बेहोश नहीं हुई। अपने मनोभावा से लड़ती हुई, आँसूँ फाड़ कर दीवार की ओर ताकती हुई बैठा रही। आँसू की दो नूँदे उसके कपालों पर टुलक पड़ी।

“तुम्हारे लिए मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ।” छुटना का बल उसका सामन बैठ कर मन बना—“धर-धार त्याग दूँगा, स्त्री और बच्चा ना छोड़ दूँगा, और एक मामूली गुलाम का तरह तुम्हारे पीछे लगा रहूँगा।”

“नहीं, नहीं,” अवबद्ध कसठ से उसने कहा—“आप का स्थान मेरे निकट नहीं, अपने घर पर है। उठिये, उठिये। पागल मत बना दानिये मुझे।”

तब उठकर मे एक कुर्सी पर बैठ गया और पर्शों की ओर ताकने लगा।

“क्या मचमुच आप मुझसे प्रेम करते हैं ?”

“करता हूँ। इशर साक्षी है।”

“प्रेम बलिदान माँगता है।”

“जानता हूँ, और अपना सब कुछ बलिदान कर देने को तैयार हूँ।”

“इससे भी महान् बलिदान ही ज़रूरत है। तैयार है आप ?”

“तैयार हूँ।”

“तब भूल जाइये आप मुझ। मैं भी भूल जाने की काशिश नहीं करूँगी आपका।”

लटगडा तब उसकी जवान, और झर झर गिरने लगे उसकी आँसूँ तब पानी। मैं भा नर्न रोऊ मना अपने शब्द।

सहसा आगे बोलकर गम्भीर स्वर में उसने कहा—“बादा की विय कि आप मुझे कभी नहीं मिलेंगे, अपना काम-गया दूँगा, अपना स्त्री और बच्चा की देख-रेख करूँगे।”

मैं चुन रहा।

“क्या विये बादा।”

“करता हूँ।”

‘इश्वर साक्षी हूँ!’

“हाँ, यानी हूँ इश्वर!”

“बस, नमस्कार!”

“नमस कर।”

बह चली गई तंजी से। मैं भी लड़खड़ाता हुआ बाहर निकला कमरे से। काश मैं मर जाता उछा समय।

अपना सारा प्रपत्रम रह कर बह चली गई उसी दिन नगर से।

×

×

×

कद मास तक मुझ उयकी कोर तरर गई मिली। एक दिन मैंने समाचार-पत्रों में पढ़ा—“कलकत्ता। महान् गर्तकी मिस प्रमलता सरस्वती बीमार हैं। हृदय रोग से पीड़ित बह एक स्थानीय नर्सिङ्ग होम में पड़ी हुई हैं।” मैं तड़प उठा। तुरन्त जाना चाहिये। जाना चाहिये? नहीं, नहीं। किंतु बह जानार जा है? और! ऐसी परिस्थिति में एक दिन के लिए बादे को छोड़ देते हैं ही क्या है? नहीं, नहीं

मैं अपने को राउ नहीं बना।

गया। पता लगाकर मैं फौरन

बह थी। प्रमलता के

आरामकुरसा पर लोके

“नमस्कार!”

“नमस्कार!”

“मिस् प्रेमलता से मिलना चाहता हूँ।”

“वह तो बहुत बीमार हैं। किसीको उनसे मिलने की इजाजत नहीं है। मैं उनका भाई हूँ।”

“मेरा उनसे मिलना बहुत जरूरी है। मैं उनका एक बड़ा घनिष्ठ मित्र हूँ और वगैरे उन्हें देखे यहाँ से जा नहीं सकता।”

“आपका नाम क्या है ?”

“महेन्द्र कुमार।”

“अच्छा, ठहरिये।”

वह अदर गये और पाँच मिनट क बाद वापस आये।

“जाइये।” दरवाजे की आर इशारा करके उन्होंने कहा।

धीरे से मीने नमरे म प्रवेश किया। हाथ जोड़कर उसने नमस्कार किया। मैंने भी हाथ जोड़कर उत्तर दिया और उसे एकटक देखता हुआ खड़ा रह गया। केवल छाया शप थी प्रेमलता की। कितनी दुर्ल हो गई थी वह। चेहरा पीला पड़ गया था, आँखें गढ़ा में धँस गई थीं।

“श्रेष्ठिये।” क्षीण स्वर म उसने कहा।

रोग शय्या के समीप पड़ी हुई एक कुर्सी पर मैं बैठ गया।

“बादा भूल गये ?”

“भूला तो नहीं हूँ।”

“फिर क्या आये हैं आप ?”

“दिल से मजबूर होकर।”

“मजबूरी की बात कहना आपकी शोभा नहीं देता। आप पुरुष हैं, शक्ति-अम्पन हैं। फिर ऐसी कमजारी क्या ?”

मिर मुझपर मैं पर्श की आर ताकने लगा।

“अब तबीअत कैसी है ?”

“लड़ रही हूँ। हारूँगी या जीऊँगी, कह नहीं सकती।” और आँसू की दो बूँदें उखक मुरझाये हुए कपोलों पर दुलक पडा।

मैं दहल उठा।

“गन्ध के अन्दर दिसा हुई जा आग थी उमे इस तरह फिर मुलगा  
कर आता अन्धा नहीं किया।’ श्रीगो गोखरर उछो रहा।

“मुक्त बड़ा अफसोस है।’

“अगली ट्रेन से ध-पवन आरय और फिर कभी गा आरयेगा।  
अपना पादा न लिये। मुक्त देखिये। मिनी जा रही हूँ या नहीं?  
‘मरुहार!’”

“नमो कार!” गुन्ना उठकर मैं नज़ी से बाहर भागा। उस  
समय ता खारी शक्ति उमड़ते हुए आउछा की नाद से गठो ने लगी  
हुई थी।

दूसरे ही दिन मैं घर वापस आ गया। १० दिनों बाद मुझे फिर  
समाचार-पत्रों में पत्र—“कमलता। प्रसिद्ध नृतकी गिरी कमलता का  
आज प्रातःकाल हृदय का गति कर जन के कारण देशप्रमान हो गया।  
आप हृदय-रोग से पीड़ित हैं। आपका शाश्वत पारोकार के नियम बड़ी  
समयदाता प्रकृत हो जा रही है।” आह! यह चल रही। मेरे ऊपर  
दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। मैं अन्त हासर गिर पड़ा। दो दिन के बाद  
मुझे हाश आया। मीना में बीमार रहा। डाक्टर मर मर का पाता नहीं  
लगा सके। धीरे धीरे दृढ़ सफल के द्वारा मैं अन्ध हो जा लगा। गन्ध  
भला-बुरा हूँ, काम धंधा देखता हूँ, अपनी स्त्री और बच्चों की देख  
रख करता हूँ। लेकिन मेरे दिल में एक गहरा घाव है, जो कभी भर नहीं  
सकता। क्या मैं प्यारी कमलता को भूल गया हूँ? नहीं, नहीं। क्या मैं  
उस कभी भूल सकता हूँ? कभी नहीं। उसी का पात्र के गहरे तो मेरे  
शरीर की यह लड़-मशीन चल रही है।

## प्रतिकार

अल्हड नयनोंवा अपनी स्वाभाविक उछलनता लेकर रामलाल के जीवन में अभी आया ही था, जब उसका पिता बजाजे की एक छोटी सी दूकान, तीन पक्के भवान और पन्द्रह हज़ार नकद छोड़कर एक सप्ताह में बीमारी के नाद परलोक सिंघार गया। रामलाल ने गताव की साँस ली। उस मुँह माँगी मुराद मिली।

रामलाल ने घर पर रगरेलिया की महफ़िलों जमने लगीं। मुहल्ले के आवार उसका ज्ञानता में शरीर क्षमर उसे अनुग्रहीत करने लगे। मदिरा और रूप कं हाट में एक मनचले और गाँठ के पूरे ग्राहक की वृद्धि हुई। पट काट-काटकर जमा किया हुआ धन पानी की तरह गहने लगा।

जिस शरीर में दुर्व्यसनों का राज्य हो, उसमें काम करने की न इच्छा होती है न शक्ति। बजाजे की चलती हुई दूकान नौकरो के सिपुर्त हुई। दिन प्रति दिन घाटे पर घाटा होने लगा। छ मास के बाद दूकान बंद हो गई।

रामलाल के मार्ग में रो-रोकर अड़चा डालनेवाली उसकी खूरी कुत्त-कुत्तर साल भर बाद मर गई। उचा-बचाया यह एक पाँटा भी निकल गया। मैदान निलडुल साफ हो गया। तेज़ी से चलनेवाला दौड़ लगाने लगा।

या तो रूप हाट में बैठनेवाली अनेक सुदरियों से रामलाल का सम्बन्ध था, किंतु, छोटी बिट्टन पर उगरी विशेष करी थी। छोटी बिट्टन पहल सपन न थी, कर्माणि नृत्य और गायन कला में वह निपुण न



थी। किंतु रामलाल से परिचित हवा ही उसका भाग्य बचाने उठा।  
देरात देवता वह भालामाल ही गई।

यदि कृपे का पा हो आर रारनियो में ध्यप किया गाय, तो  
वह भी शायद बहुत शो तर न ठहर गा। फिर पंद्रह हजार की  
बात ही क्या है। दोड़ साल में तहद यमम हो गया। अब मरानों की  
बारी आइ।

महान दामोदरदास ने रामलाल की रिशत पनिडता थी। वह  
लेन-लेन का काम करता था। उगा रामलाल का छोटी बिहून से  
परिचित कराया था। दामोदरदास ही से रामलाल फ्रत ली लगा।  
खामग दो साल के समय में एक के बाद एक रामलाल के तीते  
मरान दामोदरदास के पाग रेहा हो गये।

अब घनाभाय रतान लगा। महफिल उतड़ गई, दोस्त अपनी  
अपनी राह लगे। छोटी विहा की नजर बदल गई। दामोदरदास भी  
नजर बगो लगा।

आगे बढ़ कर दौड़ावला मुँह के बल गिरा। बाड़ में आई  
हुई जवानी, रसरग मे हुआ हुआ मन, उद्वेलित गुथा और धामाव,  
विषम परिस्थिति। अधरार, निविड अधरार। उठता, गिरता रामलाल  
मार्ग राजने लगा।

×

×

×

विश्ट प्रजा की अग्नि उसके हृदय में धूधू कर रही थी। एक  
शराबखाने में बैठा हुआ, शराब पीठा हुआ, वह आग में ईंधन डाल  
रहा था। और इहाँ एक किया म उसके जर्जर शरीर की सारी शक्तिर्यो  
केंद्रित थीं। सोनेबाला जाग पड़ा उस समय जब घर के कान-बोने में  
आग लग चुकी थी। किंतु घर में या अपन अस्तित्व से उसे प्रेम न  
था। रत्ता की चेण वह क्यों करे जब उसे अरबसान ही म जीवन की  
सार्यकता दिखाइ देता थी। इसनिये उखे अग्नि का आद्वान किया।

आज ? हाँ, आज ही, इसी समय ! मिपता दिखाने जो शत्रुता करे, उसमें प्रतिकार नीचे और कौन हो सकता है ? ऐसे कपटी मित्र में बदला लेना क्या राजायज्ञ है ? जायज हाँ या नाजायज, दामोदर से बदला तो लेना ही होगा ! और वह रँगी हुई गुड़िया, वह बेवफा, मक्कार, बदजात औरत ? वह भी आज मक्कारी और बेवफाई का नतीजा लेने लगी । यह शराब है या निरा पानी ? कुछ नशा नहीं आया । हीनीबाला में जमानदारी नाम मात्र भी नहीं होती । ये दाम तो कस कर लेते हैं लेकिन खालिम माल अभी नहीं देते ।

आठवाँ प्याला पीकर, वह फरा की ओर एक टक ताकने लगा । आर्मन वाद विवाद, बीमत्स हास-परिहास, बेसुरेतान-आलाप की एक शब्दनिर्माण उसने नाना में घुस रही थीं । किंतु वह यह सब कुछ नहीं सुन रहा था । उसे सुनाइ देता था केवल प्रद्रुहाम उन विन्ट अग्नि का जो प्रज्वलित थी उसने हृदय में और इसे सुनने में उसे वही आराम मिल रहा था, जो जलते हुए फोटे पर पुलटिम गंधने से प्राप्त होता है । इसी हास की प्रतिध्वनिर्माण तो उसने विचारों में गूँज रही थीं ।

पित्तानी नितना ठीक कहने से, धा पर बैठी ही कड़ी गजर रखना चाहिये जैसी माँ गप मतान पर रखते हैं । उनकी सलाह पर चलता, तो यह दिन क्यों देखना पड़ता ! लेकिन क्या कपया-पैसा ही सब कुछ है, पंश आराम कुछ नहीं ? ऐश आराम ? इसमें जो सुख है अथ किसी वस्तु में नहीं ! किंतु इसी की बदौलत तो आज ? हाँ, धन सब कुछ है—सब कुछ ! और इसका अपहरण करनेवाले शत्रुओं को ? हाँ हाँ ! अभी अभी !

रातल उठाने, मुँह में लगाकर वह गट-गट शराब पीने लगा । बोतल खाली हो गई । मुँह बिनभाने, मुकाने, उमने खाली रातल एक थार लुप्रा दी । फिर वह उठ खड़ा हुआ और दरवाजे की ओर चला । एक थार फरा पर पड़े हुए एक शराबी के पैर में उसके लड़खड़ाते हुए पैर की टाँग ला गई ।

“हाँ ! कौन है ? देवता नहीं कर आगम कर  
रहा हूँ ! अथा है क्या ?”

किंतु रामलाल का तो यही भी ज्ञात न हुआ कि उक्त यदमस्त पर  
ने एक ख्याता का ठाकर लगा री । फिर उलभता, ता कौन ? अपने  
ही हाथ पेश की हुई बात म रहता हुआ, लज्जामता हुआ, दरवाजे  
पर पहुँचकर वह रुका, फिर गली में उतर पड़ा । सशमा न चन्द्रमा का  
मद प्रकाश गती में फैला हुआ था । निपाद न भार से दरी हुई वह  
जाय गता माता उमासे भर रहा था । रामलाल उदर की आर पड़ा ।

वह सड़कों पर प्राथ घटे तक चलकर वह एक सुनसान गली में  
घुमा आर साधारण श्रेणी के एक मकान के सामने पहुँचकर रुका ।  
निर्दिष्ट स्थान यही था । मादर प्रातस्य और नित्यभ्यता की गाद में  
वह मिलास हुए अस्त-व्यस्त पड़ा हुआ था । बद दरवाजे के समीप जा  
कर रामलाल ने साँजल गटखटाई किंतु गाद उत्तर न मिला । तब  
दरवाजे के एक मूख से वह अदर साँजने लगा । भातर सहन में पर  
लालटेन जल रहा था, किंतु यहाँ कोई न था ।

सामादर यहाँ नहीं है क्या ? सम्भव है, न हा । नहा, अवश्य  
होगा । इस समय तो वह नित्य यहा रहता ह ।’

सूना पास-परिहास की ध्वनियाँ सुनाइ देन लगीं ।

है, जार है । अथ क्या करना चाहिये ? साँजल गटखटानी चा  
दिय क्या ? नहा, यह तो अब ठीक न होगा । जटदी क्या है ? यानी  
देर के गाद वह जार बाहर निकलेगा ।

दरवाजे से उठकर, वह एक आर चबूतरे पर बैठ गया । एकाएक  
सामने से दो प्राग्मी जार-जार से बाय करत हुए आते दिग्वाइ दिये ।

ये लोग कौन हैं, आर क्यों आ रहे हैं ? हीग काइ । लेकिन ?

उठकर, वह दीवार से सटकर खड़ा हा गया । व निरुत्तर आ गये ।  
उसका हृदय वेग में धक्को लगा, हाथ-पैर काँपने लगे । किंतु, वे

आगे बढ़ गये। तब उसकी जान म जान आइ। बैठकर, जेय स  
रुमाल निहालकर, वह मत्थ का पसीना पोंछने लगा।

आपघटा बीत गया। प्रतीक्षा असह्य हो गई।

अभी तर बर नहीं निकला ? नहीं है क्या ? है तो वह जरूर।

फिर ? साँल सटपटाऊँ क्या ? नहीं नहीं।

उठकर, वह ध्यप्रता से टहलने लगा। सन्सा सावटा खुलने की  
आवाज़ हुई। तुंगत रुककर, वह थँवरे में दबकर खड़ा हो गया।

“ही—नी—ही—ही !”

दरवाज़ा खुला। प्रकाश का एक स्तंभ बाहर निकलकर, ज़मीन  
पर लेट गया। फिर दामादरदास हँसता हुआ बाहर आया। दरवाज़ा  
तुरत बंद हो गया।

दामोदरदास झूमता हुआ उस आर चला। धीरे में चबूतरे से  
उतरकर रामलाल उमने पीछे हो लिया।

“दामोदर !”

चौंकर, रुककर, मुडकर, दामादरदास पीछे देखने लगा।

“कौन है ?”

“मैं !”

“रामलाल ! कहो भाई ?”

रामलाल कुछ न बोला, उसके सामने खड़ा होकर उसकी आर  
तीव्र दृष्टि से देखने लगा।

“तुम फिर गे में हो, रामलाल ! मरी सलाह मानो, भाई अब  
यह ढग छोड़ दो ! नहीं तो !”

“नहा ता क्या होगा ? बोल !”

“निगडते क्या हो जी ? मैं तो नर सलाह दे रहा हूँ और  
तुम !”

“नर सलाह दे रहा है ! सब कुछ लूटकर—नेर सलाह !”

नाम शब्दों पर ध्यान दिया।

“इस एक नाम आप में नहीं है। इसमें तो नाम से बहुत काम निकलता है। तथा पद क्या है क्या? शब्द, पद ला!” वेव ने एक कपड़ा निकालकर उसने रामलाल की छात्र बद्धा दिया।

शास्त्रों से लेकर, रामलाल ने सीखाकर उसने वेदों पर ध्यान दिया। तब ध्यान से चारों तरफ, दाम-रदास के मध्य पर चोट कर, छेद बनाकर, रक्त में घनक-चर्चों का वह दृष्टि कफकड़ व प्रशं पर गिरा, और मन्त्रमन्त्रों लगा।

“मुझ पर श्रद्धा रखो!” रामलाल ने रामलाल पर ध्यान देकर दास तीव्र रसर में बाला।

‘धर्म और है।’ वेव से चमकती हुई छुरी निकालकर, रामलाल उसकी छात्र मगया।

“ल!” छुरी चमककर रामलाल के घाते में घुस गई।

श्रीवें नाम, सीत पर हाथ रखे हुए, वह धमके प्रशं पर गिर पड़ा।

मुझकर रामलाल उसने सीत में छुरी निकालने लगा। तबपकर रामलाल के नाम ताड़ दिया।

दूसरा जब भी रंगकर, मुझकर रामलाल छोटी छुरी के धर की छात्र नज़ा से चला।

दो मिनट में वह उस धर के सामने था। दरवाज़े के समीप जाकर, वह सँकल राटपट्टे लगा।

“कौन है?” कई क्षण के बाद फाड़ बोला।

“मैं हूँ! जरा दरवाज़ा खोलो, बड़ा जरूरी काम है।”

“क्या काम है? कहाँ से आए हो?”

“खाली तो। बताता हूँ।”

दरवाज़ा खुला। छात्री छुरी की वृद्धा नायिका हाथ में लालटेन लिये सामने खड़ी थी।

“तुम हो भइया !”

“हाँ !” अदर घुसकर रामलाल बोला ।

“कहो, क्या काम है ?”

“ज़रा रिट्टन से मिलूँगा ।”

“रिट्टन तो तुमसे मिलना नहीं चाहती ?”

“लेकिन मैं तो इस समय ज़रूर मिलूँगा, सिर्फ़ थोड़ी देर के लिये !” वह आगे ग़ा ।

“यह भी काइ रात ! ज़रूर पार मना कर दिया गया, तो यहाँ आने का तुम्हें क्या अख़्तियार है ?”

किन्तु उसने वृद्धा की बातों पर ध्यान नहीं दिया । सहन पार कर, सामने खुले हुये कमरे में उसने प्रवेश किया ।

लीम्प के प्रसाश से आलोकित उन कमरे के मध्य में पड़े हुए पलंग पर छोटी रिट्टन पान चनाती हुई अस्त-व्यस्त पड़ी हुई थी । रामलाल को देखकर, उठकर वह बोली—“कहाँ ?”

वह उसकी ओर घूरकर देखने लगा । उसके आरक्त नेत्र देख कर वह सहम गई, किन्तु दूसरे ही क्षण वह तिनककर बोली—“तुम्हें मैं क्या दही जमा है ? क्या आगे हो यहाँ ?”

“याँ ही !”

“योँ ही । वेशर्माँ की माँ कोइ हद होती है ! लेकिन, तुम तो !”

“हाँ, अब्ब्या, तो ले !” ज़ेब से हुरी निमालकर वह उसकी ओर झपटा ।

हुरी सीने के पार हा गइ । वह मुख से एक शब्द भी न निमाल सकी । तड़पकर, गनगनाकर उसका शरीर निर्जीव हो गया ।

एक चीख़ मारकर वृद्धा नायिन् बेहोश हो गइ ।

निकट, अमानुषीय अट्टहास कर रामलाल छोटी रिट्टन के माने से हुरी निकालने लगा ।

छुरा जप में रग्यर, वह धीरे धार कमरे से बाहर निकला। अब जल्दी किस बात की है ?

उस घर से निकलकर वह अपने घर की ओर चला। उस समय उसके हृदय में ठठक थी, किन्तु सिर चकर रहा था। उसके आन्दोलित मन के निरिष्ट अभिप्राय में जा-योनि शिगा अभी तक दृष्टिगोचर हो रही थी, वह फिर अदृश्य हो गई। आँखें पाड़ पाड़कर वह फिर मार्ग ढलने लगा।

&lt;

&lt;

X

घर पहुँचकर, दरवाजा खोलकर, उसने अन्दर प्रवेश किया। फिर साकल चढ़ा कर, दियासलाई जला कर, वह सामने कमरे की ओर चला। सहन में पहुँचते ही सलाई बुझ गई। दमरी सलाई जला कर, वह आगे गंग और कमरे में प्रवेश किया। गलती हुई सलाई एन और पकड़ पश पर फँसकर, वह चारपाई पर अस्व-न्यस्त लेट गया। कमरे का अभिप्राय अत्यन्त प्रगाढ़ हो गया। भीतर बाहर अभिप्राय—प्रगाढ़ अभिप्राय। चेतना अँगड़ाई लेने लगी। शून्य का परदा हटने लगा। भय उठ खड़ा हुआ। हृदय बग से धड़कने लगा, हाथ-पंर फाँपने लगे, पसीना आ गया। अभिप्राय के परदे में अगारों की तरह चमकती हुई दो पड़ी-बनी आँखें उसकी ओर घूरने लगीं। घमराकर, उसने आँखें बंद कर लीं। किन्तु उसके भस्ति-प्रदेश में भी वही आँखें दृष्टिगोचर होने लगीं। उसने आँखें खोल दीं। फिर वही आँखें !

तब चारपाई से उतरकर, उसने दियासलाई जलाई। जलती हुई सलाई ऊपर उठाये हुये सामने ताक के समीप जाकर उसने लालटेन जलाई। धुँधल प्रकाश से कमरा भर गया। छत और दीवारों पर मन्डियाँ के जाल लगे हुये थे, ताक और आलमारियों पर गर्द की तरह जमी हुई थी, पर्श मने कपड़ा और कृष्ण रस्सट में लदा पड़ा था।

ऐसा जान पड़ता था, मानो वह वेदना व्यस्त कमरा अपने अच्छे दिना की याद में आँसू भर रहा हो। एक वह दिन भी था जब वह तिल-गिलानर हँसता रहता था।

वे तीव्र आँसू अदृश्य हो गईं। तब उसे किंचित सतों प्राप्त हुआ। उस आर ताक के समीप जाकर, उस पर रखे हुये दर्पण में वह अपनी मुन्नाकृति देखने लगा। कैसी भयकर हो गई थी उसकी मुन्नाकृति। रूत की छोटी छोटी सैकड़ों बूँदों चेहरे पर जमी हुई थीं। उड़ी हुई आँसू भी आरक्त था। अधिक देखना असह्य हो गया। उसने आँसू नीची कर ली। तब उसकी दृष्टि हाथों की ओर गई। दायाँ हाथ रूत से रँगने हुये थे। उन अमानुषीय कृत्य की भयकरता मूर्त्त-मात्र हाकर उसकी आँसू के सामने खड़ी थी। उसके पैर लड़खड़ा गये। उसने दीवार का सहारा लेकर आँसू बंद कर ली। अद्भुत मानव-जीवन! साधकता-असाधकता का अद्भुत विडम्बना! सार्थक यह या वह ?

बड़ी देर तक वह उसी तरह खड़ा रहा। फिर आँसू खोलकर, जब में हाथ डालकर, लुरा निकालकर, उलट-थलकर वह उसे देखने लगा। सदृश उसकी दृष्टि जम गई। सिनेमा के चित्र-पट की भाँति लुगी के रक्त सित परदे पर उस भयकर घटना का चित्र खिंच गया—जमीन पर पड़ा हुआ घायल दामोदरदास आँसू पाड़े हुये उसकी प्रार दृष्ट रहता था। उन आँसू का वह विन्ट भाव। देखते देखते वह चित्र हट गया, दूसरा चित्र सामने आया—अपनी शयना गार में पलंग पर छोटा चित्र तड़प रही थी। सोने में रूत के पचारे निकल निकलकर श्वर उधर दिग्ग पर, पक्ष पर गिर रहे थे। वह जवादा न देख सका, आँसू बंद करके पक्ष पर बैठ गया। उसका शिर घूमा लगा। पक्ष दिलो लगा। आँसू बालकर, वह उठने की कोशिश करने लगा। उसके पैर लड़खड़ाए, वह पक्ष पर गिर पड़ा।



“दर्शन करोगे ?”

“हाँ, भाइ । आखिर मैं भी तो इंसान ही हूँ, और देखनेवाली आँखें रखता हूँ ।”

“दर्शन कराने को तो मैं तैयार हूँ, लेकिन ।”

“लेकिन क्या ?”

“एक डर है ।”

“किस बात का डर ?”

“कहीं तुम भी किसन पड़ो, ता ?”

त्रिजय ने फिर कहकहा लगाया । भुवन भाँसने लगा ।

“अरे, नहीं भाइ, नहीं । डरो मत । मरा दिल अर वृत्त हुआ जा रहा है ।”

‘लेकिन मैं सुना हूँ कि धुटाप में रस की लालसा और भी बढ़ जाती है ।’

“हा हा-हा ! यह बात तो है, यार ! तब रहने दो ।

“नहीं, तुम्हें चलना पड़ेगा ।”

“नहीं, मैं तहाँ जाऊँगा ।”

“बाह ! चलोगे कैसे नहीं ? मैं पीछे ले चलूँगा ।”

“कब ?”

“आज हा ।”

“अच्छी बात है ।”

तब तब जगह चुन रहकर, आगमपुरी पर लेटर, त्रिजय रायचन्दर का एक प्रेम-गीत गाने लगा ।

भुवन झुमने लगा । गल्य करो लगा मधुर समीप की भक्तमय परती नहरें, चन्द्रमा की रजत रश्मियाँ से अन्धेनिर्याँ दग्गी हुई मरिचा की चंचल लहरों की भाँति । विह्वल हुआ हृदय । उमत्त हो गया प्रेम । और भुवन न दगा, हाता रख पीर भी बह चुत न हो सकता । उमे ता आर नरिण, आर ।

दृष्ट गया सम्राट् । चुन हा गया विजय । कुछ आश्चर्य से, कुछ असंतोष से देखा भुवन ने उसके चेहरे की आर । धुँआं सा पुत गया था उस चेहर पर । हँसकर उठ खडा हुआ विजय । लेकिन हँसी हटा नहा सही धुँए के परदे को । भुवन कुछ समझ नहीं सका । समझने की काशिंग भी उसने नहीं की ।

“एसी क्या जल्दी है, विजय ?”

“एन काम याद आ गया । कै बने चलोगे ?”

“पाँच नजे ।”

“मेरी तरफ आआगे, या मैं खुद आ जाऊँ ?”

“बुर्ना आ जाना ।”

“अच्छी बात है ।” वह तेजी से चला गया ।

दस दिन पहले ही वी तो बात है । दूर के एक रिश्तेदार के घर दाखत थी, अनक प्रशिष्टित व्यक्ति निमनित थे । अपने पिता के साथ वह भी आइ थी । ग्रीर भुवन भी गया था । ड्राइगरूम म तमाम मेह-मागो क मामा उनके रिश्तेदार न उन लोगो से उसका परिचय कराया था । मिस्टर रामकृष्ण बर्मा ! मिस् लक्ष्मी बर्मा ! मिस्टर भुवनेश्वरप्रसाद सिनहा ! और फिर उसने उसकी आर आप्त भरकर दम्ना था । उस समय वह भूल गया था कि कहां है, क्या कर रहा है ? ओह, उह गशा, वह तमयता, देखते ही जाने वी वह प्रवल प्ररणा ! उसकी हँसी उड़ जाती उस समय, अगर मिस्टर बर्मा कह न उठते—बैठिए, मिस्टर सिनहा ।

घान नर, सिंदर कर, उसा सोफे पर उनक समीप उह बैठ गया । तत्र मिस्टर बर्मा न एक बुगुग नी तरह तरह-तरह के प्रश्न उसक सबध में किए । आप व, अदब से उसने उत्तर दिए । फिर कुछ दर तक आपन और लक्ष्मी न विषय म बातें करने क बाद उहने कहा था—  
“किनी दिन नरे यह तथरीक ल आइएगा, मिस्टर सिनहा !”

“सुन्दर, हाज़िर हाज़ंगा ।”

दावत क समय और उछक बाद भी वह लक्ष्मी क समीप ही बैठा रहा, लेकिन उससे बात करने का साहस नहीं कर सका। अथ वज्रिया नहीं तीजूर थीं, और अथ पुराने उनसे बिना किसी निमित्त के बात कर रहे थे। लेकिन, उधर अन्दर ग जान क्या, एसा साराच उठ खड़ा हुआ कि उसकी सजा पर ताला लग गया। एसा जान पड़ता था, जैसे उसक ऊपर जव छा गया हो, तबू फिर गया हो। लेकिन उसकी आँखें रह-रहकर लक्ष्मी क असाधारण रूप में उलक जातीं, प्रार सधा हाज़र वह उद हटा लता। लक्ष्मी ग भी देगा था उसका। प्रार वह बार, प्रार हर बार उस एसा जान पडा था जैसे एक तार उसके अरर पुककर उसक हृदय में जुभ गया हो।

महजिल यर्रास्त दुः। सारे इहमान पिदा हो गए। वह भी गिरा लकर सिया तरफ धर पहुँच गया, दिल में एक मीठा दर्द लकर। कैसा बिधन दशा थी उध समय उसकी! बितन रगान सपने उसने उस सान का देखे, कितना सुन्दर पहल उठाए आ गिराए। कल्पना ने तारे लोडे, आशा-लता लदलहाइ और फूलाँ से लद गई, हृदय ने अपनी निधि पहिचानी और जानन न स्वीकार किया—‘हाँ, वह भी एक महजिल है, और मामूली महजिल नहीं।’ रात आँखाँ में कट गई। दिन सनल्य विकल्प और तयारियाँ करने में बीत गया। और—

सधा क समय सज धजवर गठ भिस्तर रामकृष्ण वमा, बरिटर, क बैगल में पहुँच गया। नीकर अन्दर इत्तता करने गया, बापस आया और उस डाइगरूम में लिया ले गया। एन साके पर बैठकर वह हथर उधर दृष्टि दौड़ाने लगा। वहाँ ही प्रत्येक यस्तु में उस अपूव सुसचि और सौंदर्य दृष्टिगाचर हुआ। फर्श, पर्नीचर, तस्वीरें, गिलीन, गुलदान, प्याना, तमाम चीजें इस तरफ सजा हुए थीं जैसे किसी साने क द्वार में नग लड़े हैं। कोई कमर में आया। भुग नै

उधर दृष्टि उठाई। लक्ष्मी ने शाय जोड़कर नमस्कार किया। भुवन ने मुस्कराकर नमस्कार का उत्तर दिया। लक्ष्मी मुस्कराती हुई उसकी ओर बनी। भुवन उठ खड़ा हुआ।

“बैठिए”, लक्ष्मी ने कर्ण मधुर स्वर में कहा।

वह बैठ गया। वह भी बैठ गई।

“पापा घर पर नहीं हैं।”

“भुम्हे बटा अफमास है। मेरा तो खयाल था कि इतत तक मौजूद क्षमि प्रार उनर दशन कर सकूगा।”

“भाटी देर न आ जायेंगे।”

“रहा खुशी का बात है।”

“चाय भैंगनाऊँ ?”

“क्या तरुनीक र्निपिण्या ?”

“तरुलीक की ना इसमें का बात नहीं।” उसने मटी बजाई।

एक सैरन तुरन्त हाजिर हुआ।

“चाय लाया।”

“बहुत अच्छा।” मेवक चला गया।

“मुझे हम बात का बड़ा अफसोस रहा,” भुवन ने खुबचाते हुए कहा,—“कि कल मैं आपसे बात नहीं कर सका।”

“मैं भी तो आपसे बात नहीं कर सकी।”

भुवन सोचने लगा कि अगर क्या कहे। लक्ष्मी भी चुप बैठी रही। कई मिनट बीत गए। निस्तब्धता अशिष्टता प्रतीत होनी लगी। भुवन को एव बात सूझ गई।

“आप क्या बचाती हैं ?”

“हाँ हाँ, थोड़ा-बहुत।”

“अगर आप हम नरी भ्रष्टता न समझें, तो कहां चाहें मुनाने को इना करें।”

“संगीत की जानकारी मुझ बहुत थोड़ी है। आप मुझ होंगे।”

“लेकिन मैं तो बिलकुल कारा हूँ।”

लक्ष्मी हँस पड़ी। भुवन झेंप गया। लक्ष्मी ने उसके चेहरे पर आर देखा, गम्भार हो गई, उठी और प्याना के स्टूल पर जा बैठी सामने बाउ पर एक गीत के पृष्ठ खजाकर, यह बात के परदे के अंगुनियी दौड़ाने लगी। शुरू हो गई छाया और प्रकाश की आर मिश्रीनी। होने लगी रग की रिमभिम वृष्टि। रिचने लगे चित्र। चित्र। थिरकने लगी निरमोहिनी फला। भूमने लगा भुवन।

सेवक खजा गया चाय का सामान एक मंज पर। रितीने दे नहीं उसकी आर। बन्द थी भुवन की आर। और तल्लीन थी लक्ष्मी संगीत की मुमधुर लहरों बिखेरने में।

समाप्त हो गया गीत। उठ खड़ी हुई लक्ष्मी। भंग हो गई आत्म विस्मृति की दशा। खोना भुवन ने आर। लक्ष्मी आर उसके समीर। प्रसासा की मूर्ति बन गया भुवन।

“कितना अच्छा बजाती हैं आप। फिर भी कहती थी कि बहुत कम जानती हैं।”

“अभी तो मैं सीख रही हूँ, निश्चाय कीजिए।”

“मेरा तो खयाल है कि अब कुछ सीखना बाकी नहीं रहा, लेकिन आप कहती हैं, तो मान लेता हूँ।”

यह खाइये, यह खाइये। बार-बार इसरार करके लक्ष्मी उसे मेवे, फल और केरों मिलाने लगी। फिर चाय पा गई। लक्ष्मी ने घटी बनाई। सेवक आया और मेज साफ कर गया। अधिक रुना उचित न समझ कर, भुवन हजाकत माँगने की बात सोचने लगा। सहसा हान बजा, और माग् के आने और करने की आवाज आर।

“पापा आ गये।” लक्ष्मी ने कहा।

“बहुत अच्छा हुआ। मेरी बनी इच्छा थी कि उनसे भी मुलाकात हो जाय।”

एक मिनट में रामकृष्ण कमरे में आये। भुवन ने उठकर नमस्कार किया।

“हला! मिस्टर सिन्हा! नमस्कार! बड़ी कृपा की आपने।”

फिर उसके समीप बैठकर वह बड़ी आत्मीयता से बात करने लगा। उनसे विदा लेकर जब भुवन अपने घर की ओर चला, तो उसके आनन्द और सन्ताप का ठिकाना न था।

वहाँ प्रायः नित्य ही अब वह जाने लगा। लक्ष्मी खुलकर मिलती। दोनों के व्यक्तित्व एक दूसरे की याद लेते, परस्पर धुलते मिलते। अक्सर बहस छिड़ जाती किसी राजनैतिक, सामाजिक या सांस्कृतिक विषय पर। विचारों का खुलकर आदान प्रदान होता। मत भेद भी होता, सहमति भी।

×

×

×

त्रिजय के साथ भुवन जब लक्ष्मी के घर पहुँचा, तो साढ़े पाँच बज चुके थे। एक कार पोर्टिको में तैयार खड़ी थी। एक सेवक से भुवन ने पूछा—“नहींजी घर पर हैं?”

“हैं तो, सरदार। लेकिन कहीं जा रही हैं।”

“कहीं जा रही हैं?”

“हाँ, सरदार! इत्तला करूँ?”

“नहीं रहने दो। कहीं जा रही हैं, तो इत्तला करना ठीक न होगा।”

“जैसी सरदार की मर्जी।”

“चला चलें, भुवन!” त्रिजय ने कहा, “इस वक्त आना ठीक नहीं हुआ।”

“हाँ, चला।”

दोनों सीढ़ियों की ओर बढ़े।

“जरा गुनिये सरकार ! पाँच मिनाट रुक जाइये । तिकलती ही हागी । शायद मर ऊपर ताराज हो कि जा नया दिया, मुझ इज्जत नया गही दी ।”

“अच्छी बात है,” भुवा ने प्रचन होकर कहा ।

लौटकर वे यरामदे में पड़ी हुई श्यामसुरगिरी पर बैठ गये । हथर उधर दृष्टि दौड़ाकर हर चीज का विजय देखने लगा इस तरह, जैसे वहाँ के समस्त वातावरण से घनिष्ठतम परिचय प्राप्त कर लान के लिये उत्सुक हो उठा हो ।

लक्ष्मी बाहर आई । दानों उठ खड़े हुए । बड़े ध्या से देखने लगा विजय उसकी आर ।

“नमस्ते !” लक्ष्मी ने कहा भुवन की आर देखकर ।

“नमस्ते !”

फिर कौरूलपुत्र दृष्टि से देना लक्ष्मी ने विजय की ओर ।

“आप हैं मिस्टर विजयजुमार ! मर सहपाठी और मित्र हैं ।”

“नमस्ते !”

“नमस्ते !”

“आपसे मिलकर मुझे बड़ी खुशी हुई ।” मुस्कराकर लक्ष्मी ने कहा ।

“मुझे भी बड़ी खुशी हुई ।”

“शायद आप वहीं जा रही हैं !” भुवा ने कहा ।

“हाँ, जा ता रही हूँ । लेकिन बैठिये !”

“जहाँ वही जा गही हाँ, जाइये । हम लाग किसी दूसरे दिन आयेंगे ।”

“बड़ा कष्ट हुआ आप लोगों को ।”

“नहीं, नहीं, कष्ट की इसमें को बात नहीं ।”

विदा लेकर वे एक ओर चले गये । लक्ष्मी कार की ओर चली ।

भुवन श्री विजय गहर निकले एक पाटन से। लक्ष्मी की कार निकल गई दूसरे पाटन से।

“कहा, विजय, क्या राय है ?”

“लक्ष्मी माझा लक्ष्मी है।”

“मनाक कर रहे हो ?”

“नहीं, भुवन, मनाक नहीं कर रहा हूँ,” विजय ने हँसकर कहा—  
“ऐसी सुन्दर, नम श्री सभ्य उपयुक्ती मने आज तक नहीं देखी।  
तुम बड़े भाग्यवान् हो, भुवन !”

भुवन का हृदय सतोष से भर गया। विजय का समर्थन पाकर उसे गव हुआ अपनी सम्मति पर। किन्तु विजय के चेहरे पर फिर पुनः  
गया धुँआ ज़रा और गाढ़ा होकर।

एक चौरास्ता आ गया।

“मैं तो उधर जाऊँगा, भुवन !”

“क्या ?”

“एक काम है।”

“कि कर लेगा वह काम। इस समय चलो मेरे साथ।”

“नहीं, यार, ज़रूरी काम है।”

“अच्छा।”

दोनों दो रास्तों पर चले गये।

विजय इस तरह भागा जा रहा था जैसे अपने ही से भागने की कोशिश में भाग रहा हो। किन्तु उसका वह अपनापन उसके कदम से कदम उममें धुला मिना उसने फिर पर चमार चला जा रहा था। वह सिद्ध नहीं, साधक नहीं, महात्मा नहीं। फिर अपने उस अपनापन से इस तरह एकाधक अलग होकर वह कहीं धूरी केमे रमा सकता है ? केवल अचिन्त तथा अनवरत साधना के द्वारा मनुष्य अपने वर्तमान व्यक्तित्व से वमशः मुक्त होकर उस भावी व्यक्तित्व में



लीन हो सकता है जिसकी स्मरणता वह स्वयं निश्चित करता है। किन्तु विचार का यह भागता ता जिना अज्ञात प्रेरणा के प्रतीभूत हो जाते हैं कारण था। इसमें निश्वास कहाँ था, निश्चय कहाँ था ? हाँ वह भाग रहा था, और उसका अपनापन कह रहा था "रुना, रुनी, कहीं भागे जा रहे हो ? यहीं तो है रस की वह भरिता जिसके निरन्तर पहुँचने का स्वप्न इतने दिनों से देखते आ रहे हो।" सचमुच क्या यहीं है वह ? है भी, तो क्या अधिकार है उसे उसके निरन्तर रुचने का ? अधिकार ! अधिकार की रचना तो मनुष्य स्वयं भी कर सकता है। और भुवन ! किसने दिया भुवन को अधिकार ? अपने अधिकार की रचना उसो भी तो स्वयं ही की होगी। फिर वह क्यों नहीं कर सकता अपने अधिकार की रचना, कौन सी बाधा है उसके सामने ? मैत्री, उसकी मयादाएँ ! ऐसे स्वर्ण अवसर जीवन में बहुत कम आते हैं, और उनसे लाभ न उठाना मूर्खता है। मैत्री टिकती है, नहीं भी टिकती। और क्या दे देती है मैत्री ? नहीं, नहीं, मैत्री की अवहेलना निश्वासघात है। किन्तु अपना स्वायत्त क्या सजोपरि नहीं, और उसकी अवहेलना क्या भारी अपराध नहीं ? आह ! कैसी विकट परिस्थिति है !

श्रीचित्त अनीचित्य का विचार क्या उचित है एक ऐसे मामले में जिसके द्वारा मनुष्य पहुँच सकता है आनन्द और सुख के उच्चतम शिखर पर ! फिर कौन ले सकता है श्रीचित्त अनीचित्य का पचड़ा एस अवसर पर ! सब कुछ उचित है ऐसे मामले में, एक लोकोक्ति भी तो है इस आशय की। क्या उसे आवश्यकता नहीं उस शिखर पर पहुँचने की ? है क्यों नहा ? अवश्य है। क्या वह इनकार कर सकता है इसने कि नितान्त शुष्क है उसका जीवन, और परम आवश्यक है

उस दिन लक्ष्मी ने परिचय प्राप्त कर लेने के बाद विजय ने कई बार उससे भेंट की। और उसने तय कर लिया कि वह एक ऐसी विभूति है, जिसके लिये उच्चतम माननाश्रा का प्रलिशान कर देने में भी उसे आनाकानी नहीं करना चाहिये। लक्ष्मी ने मान लिया कि विजय बड़ा बुद्धिमान और निष्कपट है। लक्ष्मी के पिता से भी उसकी पट गई।

वह जब उनसे घर जाता, तो सदैव प्रसन्न दिखाई देता। किन्तु एक दिन वह बदनाम-अपित्त गाम्भीर्य धारण किये हुए था। उसके चेहरे की ओर टरकर लक्ष्मी ने कहा—“यान आप कुछ चिन्तित दिखाई देते हैं। क्या बात है ?”

“कुछ नहीं।”

‘ फिर भी ?’

‘ एक बात है।’

“क्या ?”

“वह बात मुझे मतलाना में मुनासिब नहीं समझता।”

“जोई बहुत बेसी बात हो, तो रहने दीजिये।”

“बात यह है कि उसका एक ऐसे व्यक्ति से सम्बन्ध है जिसकी हम टाना इजाजत करते हैं।”

लक्ष्मी निश्चिन्त रही।

“तुम्हारा मौजूदल जाग पड़ा है, और रात भी कुछ पैसा नहीं है। इसलिये श्रव यह भी उचित नहीं है कि उसे तुमसे दिपाऊँ। उसका सम्बन्ध भुवन से है।”

“भुवन से ?”

“हाँ, बात यह है कि भुवन की सगाई एक लड़की से हुई थी। वह सुन्दर, सुशील और पढ़ी-लखी है। भुवन उसे चाहता भी बहुत था। लेकिन उनके क्यो, श्रव यह उससे शादी करना नहीं चाहता।

लड़की बनी दुःखी है। मुझे का ना मनुष्य समझना कि अपने वचन में हुए मादना तुम्हें शान्ता नहीं आता। तबिना यह एक नहीं मुनता।”

गम्भीर बनी बैठी रही लक्ष्मी।

“म मानता हूँ कि मनुष्य का अधिकार है कि वह जिसमें चाहे प्रेम करे। किन्तु ऐसा प्रेम, जो जिस पर सके, क्या प्रेम कहलाने के योग्य है।”

“हाँज नहीं।”

“जिनका दुःख है वह लड़की। एक और उग्रही स्थिर आराधना है, दूसरी और भुवन की निष्पृग्ता। और मैं मानता हूँ कि मनुष्य यह सारे न उतरकर भी खिड़ला कैसे बना रह सकता है।”

नाम हो गया। वह उठ खड़ा हुआ।

“अप चलेगा। नमस्ते।”

“नमस्ते।” बिना उसकी ओर देखे, धीरे से उत्तर दिया लक्ष्मी ने।

वह चला गया। विचारों में डूबी हुई बैठी रही लक्ष्मी। ऐसा है भुवन। वचन देकर वह उसने मुझे माड सकता है। उसके प्रेम में स्थिरता नहीं। गइरा म उतरकर भी वह खिड़ला बना रह सकता है। यह सब क्या सच है? उसके एक धनिष्ठ मित्र ने यह बात मतलाई है, और उसके ऊपर अविश्वास करने का कार कारण नहीं है। ऐसी है दुनिया। सोने की तरह चमकनेवाला हर चीज खाना नहीं होती। ऐसे व्यक्ति में प्रेम करना क्या प्रेम का अपमान नही? किन्तु प्रेम क्या अपने वश की बात है? अच्छा का नाम पकड़कर वह कौन इस कटका-कौश पथ पर चल सकता है? वह आधी है, खडर है, भूकम्प है, जाडू है। वह आता है, मनुष्य के अन्दर घुसकर बैठ जाता है, और उसे अपने ही रंग में रंग डालता है। उसने उसे निर्मात्रित नहीं किया, किन्तु वह जानती है कि आज वह उसके अन्दर मानुद है, और उसके

हृदय पर उसी का शासन है। कैसे छूट सकती है वह उसने जगुल से ? कौन लौट सकता है इस मञ्जिल से ? लौटना चाहिये उसे, लेकिन लौटना असम्भव है। आह, कैसी विडम्बना है यह ! वह उसके प्रेम के योग्य नहीं, लेकिन प्रेम तो उस उसमें करना ही पड़ेगा। मिट्टी का लौटा ही सही, लेकिन जब भस्म ने मान लिया कि यह भगवान् है तो उसके लिये तो वह भगवान् है ही। भगवान् दोगे अथवा उसे आशीर्वाद उसी का अन्दर से। लेकिन किन्ती दूसरे से उसे छीन लेना क्या उचित है ? नशा, उदासि तह। यह उसमें न होगा। सम्भव है कि उस लड़की के प्रति भुवन का मनाभाव में उसीके कारण परिवर्तन हुआ हो। लेकिन भुवन उसका साथ अन्याय करे तो क्या, वह तो नहीं कर सकती। गहराई में उतरनेवाला छिद्रला केस था वह सफ़ता है ? नहा, नहीं, जीवन अनित्य है, प्रेम नित्य, अनन्त, अक्षय, और सर्वापारि। लुप्तता उसकी महानता के निरन्तर टिकगी केस ? नहीं, नहीं।

×

×

×

दूसरे दिन प्रातः काल भुवन को लक्ष्मी का यह पत्र मिला —

“प्रिय मिस्टर सिनहा,

अब आप मरे घर न आया करें। आपसे अब मैं मिलना नहीं चाहती। आप यह समझे ल कि मुझमें आपका कभी परिचय ही रहा हुआ था।

लक्ष्मी।”

भुवन माथा पकड़कर बैठ गया। क्यों लिंगा लक्ष्मी ने ऐसा पत्र ? उससे यह अप्रसन्न है क्या ? अथवा अप्रसन्न ? अप्रसन्न न होता, तो ऐसा पत्र क्यों लिखती ? किन्तु क्या अप्रसन्न है वह ? उसने तो अपनी जान में कोई घंटी घात नहीं की जो उसका अप्रसन्नता का कारण बन सकता। कारण चाहे जो कुछ हो, यह तो स्पष्ट ही है कि वह उससे कोई सरोकार रखना नहीं चाहती, और चाहती है कि वह

भी उमम काद गगकाद १ रम्य । यह ता उम करना ही पड़ेगा । अब  
 द्रतास काम लेता था अथवाभी यह उन वहाँ सकता है ? किन्तु क्या वह उसे  
 भूल सकता है ? अथवा पावन म प्राकर, माया के कोमल सारा को कहता  
 कर जिसने एम रामन, मयुर, चिर पीरी सजीत की रचनाकर ही हो उसे  
 क्या काद भूल सकता है असम्भव । अथवा अथवा है, ता यादिका का  
 काना काना लालहा उठता है, तिन उठता है भूम पड़ता है । रोमिन  
 एर दिन अर वर सुखाप भिखक जाता है, तो क्या वह उसे भूल  
 जाजी है भूल सकती है ? कदापि नहीं । क्या करना हागा तर ?

पत्र ११ म गगकर वह शान्य दृष्टि से पर्श की आर ताकने लगा ।  
 माँ न उमर म प्रवेश किया ।

“इस तरह क्या बैठे हा भुवन ? आज पढ़ने नहीं जाओगे  
 क्या ?”

‘नहीं !’

‘क्या ?’

‘तमाअव ठीक नहीं है ।’

‘क्या हुआ है तुम्हें ?’

‘भिर में दर्द है ।’

‘तल मल दूँ ?’

‘नहीं, रहा दा, मा ! अभी हलका है । मुमकिन है दबाने से बच  
 जाय ?’

‘एस्पीन ही खा ला !’

‘सा लूँगा ।’

‘अच्छा मैं अभी मगाय देती हूँ ।’

चली गई । भुवन भिर बिचारों में डूब गया ।

माँ के बहुत कदने सुनने पर उसने पाड़ा-सा भावन किया । लेकिन  
 स्वाना उसे अच्छा नहीं लगा ।

दिन भर वह अधकार से घिरा हुआ पड़ा रहा। सध्या के समय उसे आलार फिरसे दृष्टिगोचर हुई। वह उठ बैठा। प्रश्न हल हो गया। मन का भयङ्कर वेदना से वह लड्डेगा, लक्ष्मी से मिलन की कोशिश नहा करेगा, और उस भूल जाने की कोशिश करेगा। अवर्भण्य वह नहीं बना रह सकता। अध्ययन में वह पूर्णतया तल्लीन हो जायगा, मनारजन के साधनों से पूर्णतया लाभ उठावगा, शांति और सन्तोष का राज करेगा। आशायँ साथ छोड़कर तिसक गईं। जाने दो उन्हें। उनके बिना क्या काम नहीं चल सकता? हृदय क्षत विक्षत हो गया। रहे वह क्षत विक्षत। एक नूतन स्वप्न-जगत् का सृष्टि करेगी उसकी पीड़ा। और वह पगु जानन चल लगा जड़ता का हाथ पकड़-कर, पर निश्चित अन्त की आर।

×

×

×

एक पत्रवारा बीत गया। ललिन भुवन भूल नहीं सका लक्ष्मी को। उसकी सूरत हर समय बसी रहती उसकी आँखों में। अपने निश्चय पर वह अनश्य दृष्ट रहता। अध्ययन में वह अनरत तल्लीन रहता। मन जब न लगता, तो चिल्ला कर पड़ता। विश्वविद्यालय वह बराबर जाता। मनारजन के साधनों से भी काम लेता। किन्तु गहन विषाद उसके मुख-मण्डल पर बराबर अंकित रहता। उस ऐसा भाव होता, माना उसका अस्तित्व एक ऐसे कठिन रोग के चंगुल में फँस गया है जो धीरे धीरे उसका क्षय करके ही दम लगा। अपना शरीर को जड़ मशीन बनाकर उस पर कठोरता से शासन करके क्या कोई अपने का पूर्णतया जीत सकता है? शायद नहीं। उस काम में लिये तो एक ऐसे आध्यात्मिक रस की जरूरत होगी, जो उस पत्र-पत्र संचि में बाल सके। वहाँ था भुवन के पास यह रस?

विजय से भी वह इधर भँट नहीं कर

इन दिनों

। एक बार

लेकिन वह नहीं आया। वह सत्य एक बार उसमें मिलने गया, लेकिन वह नहीं मिला। एक दिन वह एक जगह दिखाई दिया। उसी तुरंत आशा लगाई। रिजय न दूर में पुढ़कर उसरी ओर देगा, और तभी स एक शर बर गया। भुवन तो आश्चर्य हुआ, दुःख भी। किन्तु रिजय ने इस असाधारण व्यवहार का कारण वह नहीं समझ सका। समझना तो प्रयास भी उसने यथेष्ट नहीं किया। अपनी ही विन्यायों उस परशात परन के तिय क्या कम थीं ? फिर कभी उससे भट करने की काशिश उसने नहीं की।

लक्ष्मी भी नहीं भूल सका भुवन को। उसने याद उसे हर स्मरण मतायी रहता। उसके आँसों की हँसी उड़ गई, कपोलों की सुर्ती शायर न गई। और गहन नैराश्य उसका मन में बैठ गया जमकर। सगार उस नीरस एवं शुष्क प्रताप होने लगा। और जान पड़ने लगा उसे कि जान एक ऐसा भार है, जिसे बहुत दिनों तक शायद वह सहन न कर सकेगी। मनुष्य का जीवन जब उस अवस्था में पहुँच जाता है जब उसे एक आधार की आवश्यकता होती है, तो उसे खोपे बिना बर रह नहीं सकता। और उसे खोज कर अपना लेने के बाद उसी पर स्थित रहकर वह फूल बन सकता है। उस आधार से सहसा वंचित हो जान पर जान यदि ज्यातिहीन हो मुक्त हो लगे, तो यह खयाल आभाषिक है। लक्ष्मी जाती थी कि उसने एक महान त्याग किया है। किन्तु त्याग क द्वारा प्राप्त किया गया मोक्ष उस आधार के अभाव की पूर्ति करने में असमर्थ सिद्ध हो रहा था। उस आधार की खोज क्या वह फिर करेगी ? कदारि नहीं। नशा चादिय उसे ऐसा जीवन जो अपनी ही दृष्टि में उसे मिला दे।

और रिजय ? वह भी मुश न था। जिस माग पर वह चल पया था, उस पर वह चला जा रहा था एक दीवान की तरह, मतवाले की तरह। किन्तु जब जब उसे होश आ जाता, वह काँप उठता और

आचने लगता कि आगे कदम बढ़ाना क्या ठीक है ? अपना स्वार्थ सर्वोपरि रखी, विन्तु दूसरा का हितचलक, रीढ़कर चतते रहन से क्या खुद गिर पड़ने का भय नहा है । अनश्य है । लेकिन इतनी दूर आगर क्या वह पीछे लौट सकता है ? नही, हमिज नही । उसे आगे बढ़ना पडगा, बढ़त ही जाना पड़ेगा । गाभल सामा है । अत ता वहाँ पहुँचपर ही तह दम लगा । सुमानेन है, यह उसके लिये मीठा जहर भ्रानित है । एतना अगर कोई चन्द्रमा तरु पहुँचना चाहे और पहुँचना का आभ्य रगतता ही, ता क्या मृत्यु के भय के कारण उसे वहाँ तक पहुँचा का प्रयत्न ही न करता चादिब ? परता चादिबे, अनश्य करना चादिब ।



“ठीक कहा आपने।”

“वह कठिन समय आज मेरे सामने है, और मेरा खयाल है कि वही शायद तुम्हारे सामने भी है।”

लक्ष्मी निश्चिन्त रह गई।

“रम का धात जम रुक जाता है, बूझ खूब जाते हैं, फूल मुर्झा जाते हैं, काटिका उतड़ जाती हैं। किन्तु यदि किसी में उन सब की उस दारुण विपत्ति से रक्षा कर सकना की शक्ति हो, तो क्या उसे उस शक्ति का उपयोग न करना चाहिये ?”

“अपश्य करना चाहिये।”

“एक दूसरे की रक्षा कर सकने की शक्ति हम दोनों में विद्यमान है, लक्ष्मी ! क्या हमें उससे लाभ न उठाना चाहिये ?”

सिहरकर लक्ष्मी फश की आर ताकत लगी।

‘मानव जीवन दुर्लभ है, लक्ष्मी ! कुछ त्याग, कुछ पलिदान करना पड़े, तो भी मनुष्य का धर्म है कि वह उसकी रक्षा करने में मुग्न न भाड़े। एक-दूसरे का अपना-अपना हम एक-दूसरे की रक्षा कर सकते हैं। अगर तुम मुझे अपना जीवन-सहोदर बनने के योग्य समझा, तो अपने का धर्म मानूँगा, सौभाग्यशाली समझूँगा ?’

लक्ष्मी काँप उठी।

“मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, बेहद प्रेम करता हूँ। तुम्हारे बिना मैं जी न सकूँगा। मेरी रक्षा करो, लक्ष्मी !”

अब निश्चिन्त रहना श्रीचित्तवृत्त रुक गया। धीरे धीरे लक्ष्मी ने कहा—“मैं प्रति आपका जो विचार है उनसे लिये मैं आपको धन्यवाद देती हूँ। लेकिन, खेद है, मैं आपकी बात मानना मैं असमर्थ हूँ।”

“क्यों, लक्ष्मी ?”

“मैं आपसे प्रेम नहीं करती, नहीं कर सकती। प्रेम नहीं है प्रेम। प्रेम तो मनुष्य जीवन में कभी एक बार ही कर सकता है। मेरा हृदय

स्वतन्त्र नहीं है। वह जिसका था, उसीका रहेगा।” वह उठ खड़ी हुई। मन्त्र-मुग्ध दृष्टि से विजय उसकी ओर ताकता रह गया।

“नमस्ते !”

“नमस्ते !”

वह चली गई। किसी तरह उठकर वह भी चला गया, विक्षिप्त-सा, खोया हुआ-सा, लुटा हुआ-सा, पिटा हुआ-सा ! खुल गई उसकी ओर। माना एक स्वप्न था जो टूट गया, एक खुमार था जो उतर गया। ज्ञात होने लगा उसे कि वह कहां है और क्या है। तो ऐसा है लक्ष्मी के प्रेम का रूप ? कितना महान् है वह ! आग में पड़कर वह जल नहीं सकता, अत्ररोध से विचलित नहीं हो सकता, तूफान उस पर अरार नहीं कर सकता। सज्जन की तरह मुट्ठा है वह, सागर की तरह अथाह। और उसका अपना प्रेम ! कितना तुच्छ, कितना निरृष्ट है वह ! स्वार्थ के सहारे वह खड़ा है, कपट उसका अस्त्र है, त्याग और बलिदान उसने जाना नहीं। उसीका उसने दुःख दिया, जिसे प्यार करने का दम भग, मैत्री का रौंदकर वह आगे बढ़ा। ऐसा अपवित्र अर्थ लेकर वह गया था उस पावन प्रतिमा के सामने ! धिक्कार, खेहड़ो-हजारों बार धिक्कार !

हॉस्टेल पहुँचकर, अपने कमरे में जाकर, दरवाजा बन्द करके विजय चाण्पाह पर अस्व-व्यस्त लेट गया। अब क्या रहा उसके पास ? त्रिभुवन भिन्न हो गया आशाओं का गुहादग जाल। आहत होकर ढेर हो गईं मधुर लालसायें। उड़ गये पंख फैलाकर सुन्दर सपने। बकरी रह गया है केवल वह सगा घूना-सा, नूना भटकी अपवित्र जीवन। गुमराह नहीं था वह पढ़ने, विफल भी था, विन्दु-सत्त्व है वह। दिव्य उदम पुष्पा के यशभूत हाकर, रक्तिम पथ पर दौड़कर गडों में गिर, ऐसी कर्मिणी में सन गया है यह जिसका धुल सकता आत्मव है। मधुवन पर रक्तिमर ऐसी टॉपर गाह है हसनत जिसे अन्धकार से शब्द

य" सब न सकेगा। "दर म डर भी यह छिपना गे।  
 असाध था उमका छिपनागन। "कभी तुम भी गिगन पड़ा ता।"  
 सत्य निद्र हो गद गदाक म बदी गुर मुता की गद राग। घद एना  
 गिगा, पेसा गिगना कि असाध का ही ल दगा। गुना। सीधा-गारा,  
 भावा मला मुनन। तड़ पाटने की के शिश की उगन घस घवि की,  
 गग गिग की। कसा मयकर शिवातपात या यह? रोज नहीं है प्रेम।  
 केवना सत्य ह लक्ष्मी का यह कथा। गिग-देह रोग नहीं है प्रेम। एन  
 वाग की धार पर रल सक्ने की सामर्थ ररायेवाला व्यक्त ही उसकी  
 अग्नि-गरीश म खग साधित हा सकता है। त्याग करना, बलिदान  
 गगा गिगन सीमा नहीं यह किन उत्तीर्ण हा सकता है उसम।

घरा लगा उस भयाक अ-भरार। घुने लगा उसका दम। बड़ी  
 देर तक पडा रहा यह मूर्छित-का। गदगा दृष्टिगार हुई आलाप की एक  
 गगा। जान आई उसकी जान में। उटकर जा बैठा यह नेज पर,  
 और लिगने लगा एक पत्र।

X

X

/

Y

उसी दिन, रात के समय गुना को लक्ष्मी का एक पत्र मिला।  
 उमम लिगना था—“रुपया तुगन्त आगे का कष्ट बीनिय। एक ज़रूरी  
 काम है—लक्ष्मी।” हप से उमका हृदय भर गया। आशायें गिर जाग  
 पड़ीं। क्या मुलाया है उसम। जाना चाहिये? ज़रूर जाग चाहिये।  
 किन्तु यदि इसका परिणाम कुछ न हुआ ता? गिर भी उसे जाना  
 चाहिये। तुगन्त वैचार हाकर यह चल पड़ा।

लक्ष्मी झाड़ग-रुम म उसका इन्तज़ार पर रही थी। उसे देगते ही  
 यह उठ खड़ी हुई।

“नमस्तु!” लक्ष्मी न मुक्कराकर कहा।

“नमस्ते!” मुनन ने गम्भीरता से उत्तर दिया।

‘नैटिये।’

वह दूसरे साफे पर बैठने लगा ।

“इसी पर बैठिये ।”

वह बैठ गया उसी साफे पर । लक्ष्मी भी बैठ गई । दोनों चुप थे । निस्संभता चलने लगी भुवन को । लेकिन वह क्या कहे, तब लक्ष्मी ने उसके हाथ में एक पत्र दे दिया ।

“क्या है यह ?”

“देखिये ?”

लिफाफे में पत्र निकालकर वह चुपचाप पढ़ने लगा—

‘लक्ष्मी,

भुवन के सम्बन्ध में मैंने तुमसे जा कुछ कहा था वह सब भुट था । किसी दूसरी लड़की को वह नहा प्यार करता । केवल तुम्हासे उसे प्रेम है ।

वह सब क्या कहा था मैंने तुमसे ? इसका कारण एक था, और वह यह कि मैं तुम्हें प्यार करने लगा था । मैं मानता हूँ, वह मेरी धृष्टता थी उसी धृष्टता ने मुझे गढे में दफेल दिया । मैं मदहोरा था । तुमने आज मेरी आँखें खोल दीं । सचमुच ‘खेल नहीं है प्रेम ।’ तुम कितनी मरान् हो, और मैं कितना छुद्र हूँ ! तुम्हीं का मैंने दुःख पहुँचाया तिस प्यार करने का दम भग । भुवन को मैंने धारणा दिया जो मेरा मित्र था और मुझमें विश्वास करता था । कैसा पतित हूँ !

किन्तु विश्वास करो लक्ष्मी, अब मैं तुम दोनों के रास्त न काँटा नहीं उना रहूँगा अपनी छाया भा तुम्हारे मार्ग में न पडन दूँगा । अब तो मेरी केवल यही कामना और प्रार्थना है कि तुम दोनों एक हावर फूला फलो ।

काई आशा अब मेरे जिय नहीं रही । मेरा यह अपवित्र जीवन अब मेरे योग्य भी नहीं रहा । सचता हूँ कि जा अग्नि मेरे अन्दर जन

## वेवफा

पानी घबराता चल रहा है। फिर घर समा चकर फाट रहा है। फिर भी शरीर का पुँका जा रहा है। अन्धिर बरखाती है।

गण्डे तीन बज चुके हैं। घर का दाखर बन्द हो जगता। होठों का काम का यह जान है कि अभी तक पूरा नहीं हो गया। पदों का भी धमी इलाका नहीं हुई। तिन दाखर बन्द हो के समग तक, यह अपना सारा काम समाप्त कर देता था। मेडिन शान बर धन बाद का गया है। लाग बोटियों फगो पर भी, धान का काम प्रभूग हो रह गया।

बस यह भी कि उसके इन्दर एक भयानक प्रति धान रहण प्रवृत्तित हो उठी थी और कम होने के सगाय बर निरन्तर बढ़ती ही जा रही थी। यह अशान्ति उसक मन में घर घर चुकी थी और रह रहकर भयानक घेग में उठकर बर उस चारों ओर में डूँक लेती थी। इस अशान्ति का प्रसक्त था एक विचार, जो अथ गिगारों का टपेल पर ऊपर आ जाता था। बड़ा कष्टदायक था यह विचार।

रतनी—वेवफा ! यह, तिन उसने सम्पूर्ण हृदय से प्यार किया तिन अपना सवस्व अपण कर दिया, तिनके पाछे पर-वार त्याग दिया, तिनके कारण समाज द्वारा लाडिल और अपमानित भी हुआ—पर वेवफा ! हृदय विश्वास नहीं कर पाता था। सकिन सदेह वाधारण नहीं था। आँसो देला प्रमाण था।

बड़ा भावुक है रागेश्वर, लेकिन उसकी भावकता अभी नहीं है। यह शेर की तरह काधित हो सकता है, पवन की मूर्ति आन्दोलित हो

सकता है, लेकिन अकारण नहीं, नितांत कल्पना जनित भावना की प्ररक्षा से नहीं। चरम सीमा तक पहुँचो हुई आज की यह भावना भी कल्पना जनित नहीं है। इसका भी एक सुदृढ आधार है। यह दृश्य—दिल में नश्वर की तरह चुमनेवाला वह दृश्य ! सवेरे ही की तो बात है।

उसके घर की बैठक। गोपाल एक आरामकुरसी पर पैर पैलाये टटा हुआ है। रजनी हलुए की तश्तरी हाथ में लिये उसने सामने गटी हुई हैं। मुस्कान दाना के चेहरों पर व्यक्त है। दोनों की आँसों मिली हुई हैं और एक दूसरे से जाने क्या-क्या कह रही हैं। वह अदर भाँकता है, देखता है और उलटे-पाँव वापस जाता है।

जा रात वह रजनी से कहना चाहता था, वह मस्तिष्क से उड़ गइ। गहरी चीट लगी है उसके दिल पर। जाने वैया लग रहा है। पैर ठीक तरह नहीं पड़ रहे हैं। विचारों की विविध धारयें एक दूसरे से टकरा रही हैं। मिर चकरा रहा है। किस तरह सहन पार करके वह दातान म पहुँचा और किस तरह सीढ़ियाँ पर चढ़कर वह ऊपर पहुँचा, यह सब वह नहीं जानता।

वह पलंग पर पड़ा है। वही है यह शयनागार। शयनागार की सागी चीजें भी ये हैं। लेकिन आई चीज पहले जैसी नहीं लग रही है। जैसे मारी चीजें एकाएक परिवर्तित होकर अपरिचित सी लग रही हैं। यह स्वयं जैसे एकाएक परिवर्तित होकर अपने को अपरिचित लग रहा है।

उन दाना की आँसों का वह भाव उसकी आँसों के सामने चकरा काट रहा है। और वह उसका वास्तविक अर्थ समझने की काशिश कर रहा है। यह मद बुद्धि नहीं है और अर्थ भी तुषोप नहीं है। 'सूत्र बेव कृष् घना तु, रामेश्वर !'—कोई मा में वह उठता है। बेशक बड़ा, बेवकृष् घना वह। उस कथन से वह असहमात वैसे प्रकट करता है अस्मति के लिये बाद आधार साधने से भी नहीं मिला।

गाता न बीन है रजनी का । दा गिन पहले घर भागा उमर  
 पर आता और राना ने उसे बान्ताया नि यह उजरी मौआ की ननेद  
 का अठाना का लड़का है, ता रामश्वर न मान लिया कि यह दूर क  
 रिशत म रजनी का भाइ है । उमा सह उठका स्वागत किया और  
 उसकी पिानी खातिर बन पड़ी ठतनी थी । उसी उसमे सुाकर  
 रान की, हँसी रिताती भी की । इस तरह गामल का समुपत स्वागत  
 सत्कार करन म उसने कुछ उज गरी रगा । यह योवरर उसे  
 अत्यधिक मनोर हुआ नि आदिार एक पता गागर मिल गया,  
 जिसे व अपना लेंग और जा उई अपना लगा । क्रियु आन रिताता  
 निराधार भिद हुआ यह गता ।

बीन थी रजनी ! जिस मुदल्ले में रामेश्वर का पैदुक निवास स्थान  
 था, उसमें दुलारी नाम की एक स्त्री रहती थी, जो गिम्न घर की थी  
 और जिसके चरित्र के सम्बन्ध म लागो को सन्देह था । इन्ही दुलारी  
 के घर रामेश्वर ने रजनी का पहल-पहल देखा था । वह मिथुर था,  
 और उसका मित्र और घरवाले पुनर्निगाह के लिये इत्तार कर रहे थे ।  
 अगर से तो वह इनकार कर रहा था, लेकिन अपने मन म यह अनुभव  
 करता था कि स्त्री के रिता उसका काम नहीं चल सकेगा । रजनी को  
 देखकर वह उसके प्रति आकृष्ट हो उठा और उसे लगा कि उसकी  
 उस सख्त ज़रूरत है । दुलारी के घर यह कमी नहीं गया था और  
 अब भी उसके बर्दा जाना, उसे उचित प्रतीत नहीं हो रहा था । फिर  
 भी उसका घर जाकर उसने रजनी से भेट की । तीसरी भेट क समय  
 रजनी ने उसे अपनी कसब कथा की कह सुनाई । रानी ने कहा—  
 “म विधवा हूँ और एक प्रतिष्ठित कुल की हूँ । बरेली में मेरा मायका  
 है और वहीं गनिहाल भी । तीर्थ-यात्रा के निमित्त मैं अपनी नाती के  
 साथ यहा आई थी । यहाँ पर जिस पंडे के घर इन दोनों ठहरी थीं,  
 वह बड़ा दुष्ट निकला । एक रात को जब मैं अपनी गानी के पास

सो रही थी, वह मुझे उठा ले गया और उसने मुझे अपने घर की एक कोठरी में बन्द कर दिया। सबेरे जब नानी की आँख खुली, तो मुझे अनुपस्थित पाकर वह घबरा उठा और मुझे खाने लगी। पूछ-ताछ करने पर पड़े ने कहा कि वह मेरे गार में कुछ नहीं जाता। कई दिना तक इधर उधर मेरी खोज करने के बाद वह घर लौट गई। शायद पड़े की इस बात पर उन्हें विश्वास हो गया—'सम्भव है, वह किसीके साथ भाग गई है।'

“पड़े ने मरा सप कुछ छीन लिया और कुछ दिना के बाद वह मुझे तरह-तरह की यातनाय देन लगा। अभी तक उससे अपनी रक्षा कर सकने का कोई उपाय मेरे पास नहीं था। लेकिन एक दिन मुझे बच निकलने का आसर मिल गया। उस दिन उसने मुझे कोठरी में बन्द नहीं किया था। दिन भर वह घर नहीं आया, रात को भी नहीं आया। आधी रात के समय जब चारों ओर सजाटा छा गया, और घर के अंदर लग गहरी निद्रा में निमग्न हो गये, तो मैं चुपके से अपनी कोठरी से बाहर निकली और दब-पाव सदर दरवाजे की ओर गई। धीरे से सदर दरवाजा सोंजकर मैंने बाहर चढ़ने पर पड़ी हुई चांगपाइयाँ पर कद लटकाए लेटे हुये थे। वे सब खुराटें भर रहे थे। मैं धीरे धीरे बाहर निकली और गली में पहुँचकर तेजी से एक ओर भागी। भय और विकलता में मैं काँप रही थी, और मेरा हृदय बड़ बेग से धड़क रहा था। उस गली से निकल कर मैं एक मकान पर पहुँची। फिर उस मकान से दूसरी सड़क पर, दूसरी से तीसरी पर और तीसरी से चौथी पर। नाना कितनी सड़कें पार कर चुकने के बाद अन्त में, मैं एक ऐसे स्थान पर पहुँची, जो पूर्णतः विजन प्रतीत हो रहा था, जहाँ आस-पास कोई घर दिखाई नहीं दे रहा था, वहाँ एक पद के गड्ढे में रात फाट दी। सबेरा हाठ ही मैं फिर चल पड़ी। चलते चलते मैं एक मुहल्ले में पहुँची और वहाँ



दुलारी से मेरी भट है। इस मनी स्त्री ने बड़ी महानुभूति से मेरा हाल सुना और बस प्रेम से मुझे अपने घर में आश्रय दिया। इसका पहचान मैं जीवन भर नहीं भूलूँगी। मुझ जैसी अभागिनी ससार भर में वही न होगी।”

रामेश्वर का प्लि भर आया। वह क्षणों तक वह विम्वन्ध रहा। फिर दीर्घ निश्वास छोड़कर उसने पूछा—“अब क्या करने का निचार है ?”

“कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करें !” अबबद कण्ठ से रजनी ने उत्तर दिया।

“नानी के पास वापस जाओगी ?”

“वहाँ जाकर क्या करूँगी ? मुझे देखकर उह लाना आँयगी, और अगर वह मुझ अपने यहाँ फिर रख लेने का राजी भी हो जायँगी, तो उसकी बड़ी बदनामी होगी। जहाँ तक मैं समझती हूँ, घर लौटकर उहोने लागों से बड़ी कष्ट होगा कि याना में अकस्मात् मेरा देहान्त हो गया। ऐसी दशा में जब मैं वापस जाऊँगी, तो वह क्या सफाई देंगी ? काद सफाई दी भी जायगा, तो लोग उस स्वीकार नहीं करेंगे। नहीं, अब मैं उह परेशानी में डालना नहीं चाहती अपना यह काला मुख उन्हें फिर दिखाना नहीं चाहती।”

“तब ?”

रजनी खामाश रही।

“यहाँ रहागी तो कुछ दिनों के बाद तुम्हारी बही दशा होगी, जो उस दुष्ट पडे के घर में हुई थी।”

वह सिद्धर उठी, लेकिन उसने कुछ कहा नहीं।

“मैं एक सरकारी, दफ्तर में नौकर हूँ और मिथुर हूँ। मैं मददल करता हूँ कि मुझे तुम्हारी ज़रूरत है। अगर तुम्हें स्वीकार हो, तो मैं तुम्हारी देख-रेग का भार अपने ऊपर लेने का तैयार हूँ।”

रजनी फिर निस्तब्ध रही।

“अपने हित की बात तुम मुझमें अधिक समझ सकती हो। मैं यह नहीं चाहता कि तुम इसी समय उत्तर दे दो। सोच समझ लो।”

“सोचकर उत्तर दूँगी।”

“क्यूँ ?”

“जल्द ही।”

“कल ?”

“कल ही सही।”

और दूसरे दिन रजनी ने स्वीकृति दे दी। तब रामेश्वर उसे अपने घर लाना लाया। घर में बड़ी प्रसन्नता मची। घग्गालों ने रजनी को अपना लेना, किसी तरह स्वीकार नहीं किया। विवश होकर एक दूसरा घर लेकर रजनी के साथ रहने लगा। चारा और उसकी उदनामी होने लगी। कुछ दुष्टों के चढ़ावे में आकर दुलारी ने रामेश्वर के विरुद्ध मुक्तदमा दायर कर दिया। उनके ऊपर उसने यह अभियोग लगाया कि यह उसकी नातिन को पहनाकर भगा ले गया। दोनों और से शापदत्तें गुज़रीं। रजनी ने अपने बयान में कहा—“मैं बालिग हूँ। दुलारी मेरी कोई रिश्तेदार नहीं है। घटनावश निराश्रित हो जाने के कारण, मैंने उसका आश्रय ग्रहण किया था। उसके आश्रय की अब मुझे आवश्यकता नहीं है। अब मैंने रामेश्वरकुमार का आश्रय ग्रहण कर लिया है। उनके पास मैं अपनी इच्छा में गई थी और उन्हीं के पास फिर जाना चाहती हूँ। उनके अतिरिक्त मेरे ऊपर किसी का कोई अधिकार नहीं है।”

डाक्टरों की परीक्षा से यह निश्चय हो गया कि यह बालिग है। तब अदालत ने मुक्तदमा खारिज कर दिया। रजनी रामेश्वर के पास वापस आ गई। उदनामी और आठ दिनों के अग्रमाण से तंग आकर उसने अपनी बदली इस नगर में करवा ली।

अपनी नानी का एक पत्र लिखा, लेकिन उसका पत्र उतर उठे नहीं मिला।

इतना उर उठने रजनी के लिये किया, कि भी वह पूरी तरह उमड़ी नहीं हो सका। प्रगर वह पूरुतया उमड़ी हो गई होती, तो आन का हृष्य उसे क्या देना पड़ता ? नारी ! शायद कोई आन नहीं हो गारी के लाम का। पुष्य का बाद बनिदान शायद उस मरुष्ट नहीं कर सकता। सम्भव है, उसका इस धारणा में अतिशयाक्ति हो, किन्तु अपने अनुभव की अर्देना वह कैसे कर सकता है ? उस से कम रजनी के सम्बन्ध में तो उसकी वह धारणा सत्य हो है।

उसने इतना गह क्यों किया रजनी के लिये ? इसी लिये कि उत्तर मिलकर उस अनुभव हुआ कि यही वह स्त्री है, जिसकी उसे इतने दिनों से तलाश थी, जो उसका जीवन-सिद्धि बनने के योग्य है। आर उससे सत्य-सुख पा चुकने के बाद, रजनी ने सिद्ध कर दिया कि वह उसका भारी भ्रम था।

रजनी में रुच था, यौवन था। गृह-कार्य में वह दूर नहीं थी। सुशिक्षिता भी वह नहीं थी। साधारण भाषा ज्ञान तक उसकी शिक्षा सीमित थी। वह जैसी थी, वैसी ही उसके लिये बहुत थी। लेकिन वह जसा था, वैसा उसके लिये काफी नहीं था। शायद वह एक की होकर रहने के योग्य ही नहीं थी।

रजनी—वरुणा ! हृदय अभी तक विश्वास नहीं कर पा रहा है। सच कह साधारण नहीं है। आँखों देखा प्रमाण है। दोनों की आँखों का वह मान—दिल में नरुतर थी तरह चुमनेवाला वह मास !

रजनी का पता गोपल का मालूम कैसे हुआ ? सम्भव है, रजनी की नानी ने बताया हो सम्भव है स्वयं रजनी ने उसे पत्र लिखा हो। इसमें सन्देह नहीं कि पहले के लगान के कारण वह यहाँ आया है। बड़े प्रसन्न हैं दोनों, जैसे कोई निम-बाधा उनके सामने नहीं है।

लेकिन वे भूल रहे हैं कि एक तीसरा व्यक्ति भी है, जो अक्सर आने पर कुछ बहेगा और साधारण नहीं होगा वह 'कुछ'।

निश्चिन्त खेल है यह मानव जीवन ! आदमी की परत करने ही म जीवन का अधिकांश भाग व्यतात हो जाता है, और जब परत हा खुफती है, ता लगता है कि वह परत निरर्थक ही थी। "गूड वेवक्रूफ बना वू, रामेश्वर !" बरत वह वेवक्रूफ बना। लेकिन कोई हमेशा वेवक्रूफ नहा बना रह सकता। और मूर्ख जब बुद्धिमान बन जाता है, ता फिर उसे नाइ घोणा नहा दे सकता।

चार रज गये। अर्य कर्त दक्तर से विदा होने लगे। उसी भी फाइलें समेटकर रर दान। अगर वह आधी रात तक दक्तर म बैठा रहे, ता मां शायद आज का काम समाप्त न। हो सकेगा। टाप लगा कर वह बाहर निकला और अपनी साइकिल लेकर चलने लगा।

"अरे टहरा, गमेश्वर ! में भी चलता हूँ।"

लेकिन रामेश्वर रुना नहीं। साइकिल पर सवार होकर वह तेजी से चल पड़ा। बड़ा रक्की है राजकिशोर ! जब रात करने लगता है, तो रिमारा चाट डालता है। और उसे हमेशा अपना ही राना रहता है। कोई दूसरा विषय सूझता नहीं, और किसी दूसरे विषय म वह दिल चस्पी भी नहीं ले सकता। यहाँ इस समय अपना ही राना क्या कम है ?

हाँ, तो रजनी बरफा निपत्ती। हृदय अर भी विश्वास नहीं करता। लगता है कि जिस गरी का उनने अपना सब कुछ दे डाला, वह ऐना आछा फंस हा सगती है ? आत्म-सम्मान का टेंस लगती है। लेकिन हृदय क निरवात न करने से, आश्चर्य फाने से, आत्म-सम्मान का टेंस लगने से, घटन-पमत्य ता हा नहीं सकता। लेकिन सत्य पर परदा डालने से किसी का फतवास नहीं हाता, उसे स्थाकार कर लेने ही में भलाद रहती है। सत्य अगुन्दर हा सकता है, कडुना भी हो

सम्पत्ता है, लेकिन उसनी त्रार से मुख फेरकर काइ उसके प्रभाव से बच नहीं सफता। किन्तु वह क्या वास्तव म सत्य है ? निस्सन्देह वह सन्देह-मात्र है। किन्तु गह निष्प्रमाण नहीं है और प्रमाण साधारण नहीं है। फिर भी क्या एउ जारदार प्रमाण, अभियाग सिद्ध करन के लिये यथः है। मानव-चरित्र जटिलताओं का एक समूह है। किसी कृत्य का अर्थ सदैव वह नहीं हाता, जा ऊपर से दिखाइ देता है। सम्भव है, स्वयं उससे भूल हुइ हो, उसने गलत अर्थ लगाया हो। इध्या प्राति क पीछे-पीछे लगा रहती है। और ईष्या निराधार कल्पनायें भी कर सक्ती है, चित्र का अतिरजित भा कर सक्ती है। रजनी की बकालत वह सुनना नहीं चाहता ? लम्बिन एकतरफा डिगरी देना न्याय का गला घाटना भी तो कहलाता है ? नहीं, नहीं, उसे अधिकार क दुरुपयोग से बचना ही हागा। कम से कम अय प्रमाणा का प्रतीक्षा ता उसे करनी हागी।

×

×

×

घर पहुँचने से पहले रामेश्वर ने निश्चय किया था कि वह अभी अन्य प्रमाणा की प्रतीक्षा करगा, अपने मना भावों को प्रकट न होने देगा और पूर्ववत् व्यवहार ही करेगा। लम्बिन घर पहुँचने पर उस ग्रात हुआ कि वह सब कर सकना उसक लिये आसान नहीं है।

मरान के सामने साइकिल से उतरकर जब उसने दरवाजा खट खटाया, ता रजनी ने सदैव की भाँति मुस्कराते हुये दरवाजा खोला। रजनी की मुस्कान उसनी थकावट हर लेती थी और यह भी मुस्करा पडता था। लेकिन आज वह मुस्करा नहीं सका। रजनी उस समय नए से शिग तफ सनी हुइ थी। उसे उस रूप म देखकर, अत्यधिक प्रसन्नता का भाव उसके मन में उग नहीं सका। रजनी शृंगार पर जान देता थी। सजना-सँवरना उसके लिये कोई असाधारण बात नहीं थी। फिर भी रामेश्वर का उसम असाधारणता की बू भाइ और उसने

द्वारा भी उमे अपने सदेह की पुष्टि होती दिखाद दी। साइकिल उठा कर उसने चुपचाप घर में प्रवेश किया। सहन पार किया, साइकिल दालान में टेंग दी और तेज़ी से ऊपर चला गया। रजनी चिन्तित दृष्टि से ताकती रह गई।

उपर शयनागार में पहुँचकर, कपड़े उतारकर, पैर फंलाकर खंड गया। तूफान आने के पहले आयुमण्डल की जसी दशा हो जाती है, ठीक वैसी ही दशा उस समय उसके मन की हो रही थी। तड़पते हुये, उरलते हुये मनोभाव फूट पड़ने, उस पड़ने को मचल रहे थे। मन के ऊंगरी आवरण की बाधक शक्त क्षीण होती जा रही थी। मानव-मुरा दर्पण है जिसमें मनोभावाँ की छायाएँ आती-जाती रहती हैं। उत्तेजना की चरम सीमा तक पहुँचे हुये मनोभावाँ को दबा सकना तो उसके लिये असम्भव था ही, उन पर परदा डाल सकने की सामर्थ्य भी वह अपने में नहीं पा रहा था।

सीन्धियों से रजनी के पैरों की आवाज़ आने लगी। तेज़ी से उठ कर वह समाचार-पत्र उठा लाया और पलंग पर फिर लेटकर उसका पत्र उलटने लगा। नाश्ते की तश्तरी हाथ में लिए हुए रजनी अंदर आई। रामेश्वर पत्र में दृष्टि गड़ाये बैठ रहा।

“क्या बात है ?” चिन्तित स्वर में रजनी ने पूछा।

मनोभाव प्रकट होने का तड़प उठे, लेकिन रामेश्वर निस्तब्ध रहा।

“तरीअत कीसी है ?”

“ठीक तो है।”

“तब ?”

वह उठकर छत पर चला गया। तश्तरी तिनाइ पर रगड़कर रजनी पान लगाता लगी।

हाथ-मुँह धोकर वह वापस आया और पलंग पर बैठकर नाश्ता करने लगा। रजनी चुपचाप पान लगाती रही। वह जानता था कि

जब यह बात करता नहीं गहता, तो उससे बात करने की कोशिश का नताना अच्युत नहीं होता। पाती और पान देकर यह चली गई। उस समय गहन जिन्ता व्यक्त थी उसके चेहरे पर। उमने चले जाने से रामेश्वर का किञ्चित् मंताप हुआ। रजनी से बात करता, इस समय खतरे से खाली नहीं था। जरा देर बाद चप्पल पहिनकर और छड़ी लेकर यह घूमने चला गया।

जो बन के करीब जब यह घूमकर वापस आया, तो यह कुछ खतरा हुआ गया था। यह बात नहीं कि उसी समस्या हल हो गई हो। नहीं, यह ज्यों की त्यों बना हुआ थी। और उसके हृदय में जो अग्नि लगी उठी थी वह भी पहले ही की तरह प्रज्वलित था। बात केवल इतनी थी कि जो पार्ट खोलने का वह निश्चय कर चुका था, उसे खोल सकने का स्थिति में वह था गया था।

घर में प्रवेश करके वह बेंचक के सामने रुक गया। अखबार पाले हुए गणाल एक आरामकुर्सी पर आसन था। अखबार से दृष्टि उठाकर उसने रामेश्वर की ओर देखा।

“आ गये, भाई साहब !” दाँत निकालकर उसने कहा।

“हाँ !”

“आज बड़ी देर कर दी !”

“कुछ देर तो बेशक हो गई। खाना खा चुके !”

“जी हाँ, खा चुका। मैं तो आपका इन्तजार करता चाहता था, लेकिन बहि ने जिद की, इसलिये खाना पड़ा।”

“बहुत अच्युत किया।”

यह अन्दर चला गया। दालान में पड़ी हुई चारपाई पर रजनी लेटी हुई थी। उमने देनकर यह उठ बैठी।

“कहाँ गये थे ?”

“घूमने।”

“बड़ी देर कर दी !”

“हाँ, कुछ देर हा गइ। रास्ते में एक महाशय मिल गये। उनका साथ बहुत दूर तक चला गया, इम्निये देर हुई।”

“खाना बिलकुल टण्डा हो गया होगा।”

“कोई हर्ज़ नहीं। टण्डा खाना मुझे बुरा नहीं लगता।”

“ठीक क्यों खाता ?”

“करो ! आता हूँ अभी।”

ऊपर जाकर, छड़ी एक बाने में रखकर, कमीज़ और चप्पल उतारकर, हाथ-मुँह धोकर, वह नीचे चला गया। लग रहा था उसे कि अभी तक उसका पार्ट निर्दोष रहा और शायद आगे भी निर्दोष बना रह सकेगा।

दस रज चुने थे। रजनी उत्साहपूर्वक रामेश्वर के पैर दाब रही थी। कई बार वह मना कर चुका था, लेकिन रजनी किसी तरह छोड़ता ही नहीं थी उसके पैर। प्रायः नित्य वह उसके पैर दाबती थी और काफी देर तक दाबती थी। लेकिन रामेश्वर का इस समय लग रहा था कि सेवा भाव न उस प्रदर्शन से भी उसके सदेह की पुष्टि हो रही थी।

“रजनी !”

“जी !”

“मेरा एक मित्र नयी परेशानी में पड़ गया है ”

“किस परेशानी में ?”

“उसकी स्त्री न जाने कहाँ चली गई। बेचारे ने सारे शहर में खोज की, मित्रों और रिश्तदारों को तार दे देकर पूछ ताछ की, लेकिन कुछ पता नहीं लगा। मरा खयाल है कि वह अपने किसी प्रेमी के साथ भाग गई। लेकिन मेरा मित्र ऐसा गर्स समझता। इन्हारी क्या राय है ?” रजनी के हाथ किंचित कांप गये।



“तुम्हारे मित्र का क्या खयाल है ?”

उसका खयाल है कि उसने आत्म हत्या कर ली।”

“आत्म हत्या आसान काम नहीं होता।”

“यह तो ठीक है, लेकिन रघुवीर का कहना है कि उसकी स्त्री बन्द भावुक थी। अकसर वह बेमतलब उत्तेजित हो उठती थी और निगधार बातें साच-साचकर कई-कई दिन तक अनमनी पनी रहती थी। भगडे की कोई बात तो इधर नहीं हुई थी, लेकिन सम्भव है, काई काल्पनिक बात लेकर वह अन्दर ही अन्दर बेचैन पनी रही हो।”

“म सम्मत्ती हूँ कि तुम्हारे मित्र का खयाल ठीक है।”

“क्यों ?”

“अपनी स्त्री की बात वह हम लोगों ने ज़्यादा समझ सकते हैं। इसका अलावा यह भी है कि अगर उसका काई प्रेमी होता, तो उसकी बात तुम्हारे मित्र को जरूर मालूम हो गई होती। ऐसी बात छिपी नहीं रहती।”

“क्या अत्यधिक सावधानी रखने पर भी ऐसी बात छिपी नहीं रह सकती ?”

रजनी के हाथ फिर कुछ काँप गये।

“यह मैं नहीं कह सकती।”

रामेश्वर ने आगे कोई प्रश्न नहीं किया। उसका अभिप्राय पूरा हो चुका था। रजनी के उत्तर निस्सन्देह तन्मय थे और उनमें उसे वह नहीं मिला, जिसकी वह गान कर रहा था। लेकिन उसके हाथ दो बार काँपे थे। उसके सन्देह की पुष्टि के लिये यह यथेष्ट था।

अर्द्धरात्रि रात चुली थी। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। हवा रुक थी और वायुमण्डल में उमल भरी हुई थी। कमरे में धुँधला प्रकाश फैला हुआ था। रामेश्वर अपने निस्तर पर आँखें बन्द रख पड़ा था, लेकिन लाख वाशिशों करने पर भी सा सपना उसके लिये

असम्मन हो रहा था। पसीने से उसका सारा शरीर तर हो गया था, तनीयत बेहद बेचैन थी। फिर भी वह निश्चल पड़ा था। रजनी भी अपने विस्तर पर आँखें बन्द किय पड़ी थी, लेकिन नींद उसकी आँखों में नहीं थी। वह भी उत्तेजित थी, बेचैन थी। उस घर में एक अन्य व्यक्ति भी था। क्या हालत थी उसकी ?

खट्-खट्-खट् ! एकाएक नीचे से आवाज़ आई। वह आवाज़ काफी हलकी थी, लेकिन सन्नाटे के कारण त्रिलकुल साफ सुनाई दी। खट्-खट्-खट् ! दो क्षण के बाद फिर वैसे ही आवाज़ आई। इस तरह कर बार वैसे ही आवाज़ आई। रामेश्वर का धीरे-धीरे जाग्रत हो उठा और उसके मस्तिष्क में प्रश्नों का जड़ आ गई। लेकिन वह चुपचाप उसी तरह पड़ा रहा। रजना का शरीर हिला और उसने सिर धुमाकर रामेश्वर की ओर देखा। कई क्षणों तक वह उसे ध्यानपूर्वक देखती रही। फिर वह धीरे से, बहुत धीरे से उठी और चारपाई छोड़कर खड़ा हो गई। क्षण भर फिर रामेश्वर की ओर ध्यानपूर्वक देखकर, वह दब पाँच धीरे धीरे दरवाज़े की ओर बढ़ी। पूरी सावधानी और अत्यधिक निस्तब्धता से दरवाज़ा खोलकर वह कमरे से बाहर निकली और दबे-पाँच नीचे उतरने लगी। रामेश्वर की आँखें बन्द-सी दिख रही थीं, लेकिन वह सब वह साफ-साफ देख रहा था। कई क्षणों तक वह उगो तरह चुपचाप पड़ा रहा। फिर धीरे से चारपाई छोड़कर वह भी उठ खड़ा हुआ और दबे पाँच दरवाज़े की ओर बढ़ा।

दरवाज़े पर रुककर वह सावधानी से नीचे की ओर झाँकने लगा। सीढ़ियाँ पर धाड़ नहीं थी। वह सावधानी से कमरे से बाहर निकला और तिल्ली की तरह दब पाँच नीचे उतरने लगा। पाँचवीं सीढ़ी पर पहुँचकर वह ठिठक गया। चाँदनी का एक स्तम्भ दालान के फर्श पर पड़ा हुआ था और दालान में धुंधला प्रकाश छाया हुआ था। उस धुंधले प्रकाश में उसे लगे कुछ देगने का मिला, उससे वह चकित नहीं

हुआ। दालान के मध्य में स्थिती हुई चारपाद के ऊपर और दो छाया-मूर्तियाँ गिपगि रहती थीं।

“अच्छा, यह गुल रिक्त रहा है।” तजा से उतरते हुए रामेश्वर ने कहा।

छाया-मूर्तियाँ अलग हो गईं। रामेश्वर झपटा। गोपाल के ऊपर घुँसा और घप्पड़ा की बगल होने लगी।

“बदमाश, शोहदा, लुच्चा! गुल गद्द तेरी फलदं। अगर मैं जानना होता कि तू एसा है, तो इस घर में तुम्हें हरगिज़ कदम न रखने देता।”

“आप फिन्तूल इलजाम लगा रहे हैं, भाइ साहब।” गोपाल ने गिठगिठा कर कहा—“काई बात नहीं थी। बहिन मुझ पानी देने आई थीं।”

“पानी देने आई थीं।” घुँसा जमाकर और दाँत पीछकर रामेश्वर ने कहा—“अब तेरी काई बात नहीं सुनना चाहता। वरु, तू पीरन यहाँ से निकल जा, बगल तेरी एसी गत बनाऊँगा कि तू उम्र भर चारपाद से उठने के काबिल नहीं रहेगा।”

गोपाल तेज़ी से भागा और बैठक में चला गया। दो मिनट के बाद अपना टुक लिये हुए वह बैठक से निकल गया।

“बस, अब कभी यहाँ आने या रजनी से मिलने की काशिश न करना, वना हाथ-पैर ताड़ दूँगा।”

तेज़ी से दरवाज़ा खालकर गोपाल तुरत घर से बाहर हो गया।

रामेश्वर दो क्षण विस्तम्भ रहता रहा। फिर आगे बढ़कर उसने दरवाज़ा बन्द कर दिया।

उधर रजनी दालान में खड़ी धर धर काँप रही थी। लौटकर वह उसके सामने खड़ा हो गया। आँचल में मुख छिपाकर रजनी गिठकियाँ भरने लगी।



रजनी उसी तरह आँसू उहाती बैठी रही।

“अपने सम्पूर्ण मन स मने मान लिया कि तू मेरी आराध्य देवी है और तुझे प्यार किया, तेरी पूजा की, आराधना की। फिर मैं तू इतनी आछी बनी रही, सबसे अधिक आश्चर्य मुझे इसी बात पर है। मरा ता खयाल है कि मिट्टी की प्रतिमा ही क्यों न हो, अगर कोई उसे देरी मानकर उसकी उपासना करे, तो उसे उचमुच देवी बन जाना चाहिये। खैर, जो हो, मैं यह नहीं देख सकता कि जिस चीज़ को मैं अपनी समझूँ, उस पर मैं दूसरा हाथ लगाये। अपनी चीज़ पर किसी अन्य व्यक्ति को हाथ लगाने का अधिकार मैं नहीं दे सकता। जो हुआ सो हुआ, अब मैं इस बात का प्रबंध कर दूँगा कि काइ अन्य व्यक्ति मेरा चीज़ पर हाथ न लगा सके।”

रजनी मिहरकर तेज़ी से सिसकियाँ भरने लगा।

“रजनी ! चार जय चोरी करते पकड़ा जाता है, ताँ उसे बहुत सख्त सज़ा मिलती है। जानती हो न ?”

रजनी काँप उठी। भरपिये हुए कण्ठ से उसने कहा—“मुझसे बड़ी भूल हुई। इस बार मुझे क्षमा कर दो।”

“क्षमा ! यह नहीं हो सकता। मेरे पास जा कुछ था, वह सब मैं तुम्हें दे चुका, रजनी अब जो कुछ माँग रही ह, वह मेरे पास नहीं है। मैं क्राफी धाखा खा चुका। अब आगे खतरा उठाना मेरे लिये असम्भव है। तुम्हें अब मैं वहा पहुँचा दूँगा, जहाँ इस ससार का कोई व्यक्ति तुम्हें हाथ न लगा सकेगा।”

रजनी झोर से रो पड़ी। ग़ल्लकर, उसे गिरानर, वह उसके पट पर चढ़ बैठा। उसके हाथ बन गये रजनी के गले पर। अगाध दीनता, अपार विनय फूट पड़ी रजनी की आँगों में।

लविन रामेश्वर क हाथ फसते गये—कसते गये।

समाप्त हो गया वह जघन्य मृत्यु । रजनी का निर्जात शरीर लुप्त  
गया फिर धार ।

नशा उतर गया । रातेश्वर अपनी चारपाई पर सिर पकड़कर बैठ  
गया । सदसा भयानक भय उसके हृदय में उमड़ आया । उसका शरीर  
पत्तों की तरह कांपने लगा । पुलिम, अदालत, दरद—प्राण-दण्ड !  
मगावद चित्र दौड़ने लगे उसकी आँसुओं के सामने । उसने मन में एक  
चिन्ता आँधी की तरह उठकर चक्कर काटने लगी—अपनी चेत का  
पौरन उपाय करना चाहिये । वह सब कुछ भूल गया उग चिन्ता के  
सामने । उठकर फाट पहिनकर, एक बड़ा ताला और चाबी लेकर वह  
तेज़ी से नाचे उतरा । सावधानी से दरवाज़ा खोलकर उसने इधर  
उधर दृष्टि दौड़ाई । किसी धार कोई दिखाई नहीं दिया । तब घर में  
बाहर निकलकर, दरवाज़ा भेड़कर, साँकल चढ़ाकर, ताला लगाकर,  
वह तेज़ी से एक धार चल दिया । इधर उधर दृष्टि दौड़ाता हुआ वह  
तेज़ा से चला जा रहा था । सावधान था, चौकचा था, सजग था ।  
मौका आ पड़ने पर अपनी सम्पूर्ण शक्ति से भाग निकलने का पूरी तरह  
तैयार था, इसलिये कि उसे चञ्च निकलने की प्रयत्नतम चिन्ता थी । और  
किसी बात का उसे खयाल नहीं था परवाह नहीं भी । वह चला  
जायगा, चला जायगा बहुत दूर—बहुत दूर, जहाँ वह पूरी तरह सुर-  
क्षित रह सके । जहाँ उसका कोई रिश्तेदार न हो, सगी-साथी न हो,  
मेली-मुलाकाती न हो, जहाँ वह सन्के लिये अजनबी हो ।

कितनी ही धुँधली, धँधेरा, सुगन्ध गलियारें और सड़कें रखकर  
गई उसका पैरा के नीचे से । वह भागा जा रहा था—भागा जा  
रहा था ।

×

×

×

हड़-हड़ हड़ ! मक मक मक ! मक मक-मक ! भयानक शोर-मुल  
करती सहारनपुर एक्सप्रेस दौड़ती-भागती चली जा रही है । इण्टर का  
एक डिब्बा है । डिब्बे में बैठे हुए यात्री अपने आपमें उलझे हुए हैं ।

रामेश्वर भी उन्मत्त हुआ है अपना म। कण्ठा से हँस, कड़ जँघ रहे हैं, थड़े गुस्साप बैठ सिगरेट, बीड़ी पी रहे हैं। धुँएँ के गुस्सुरे उड़ रहे हैं। तन्हाज़ू को हाँगा मुग्ध गारु में घुसी आ रही है। फाश, वह भी एक सिगरेट गुनगा पाता। सिगरेट न दाता, बीड़ी ही होती, तो भी गनामत होती। लेकिन यहाँ तो न सिगरेट ही है, न बीड़ी और न सिगरेट, या बीटा खरीदने के लिय पैस हा हैं। पैस हाँ कहाँ से ? घर म पीले लहर ता यह चना गहा। उस समय पैस ले लेने का होश किने था ? खैर, न सही राना, न सही सिगरेट, न सहा किसी तरह का काई थाराम। वह सब कुछ सहकर, अगर नह मुरदित रह सके, अपने दुष्कृत्य के परिणाम से बचा रह सके। इसकी व्यवस्था हुइ जा रही है, यनी सन्तोष का निषय है।

दा छाट-छाटे स्टेशन आये और तिनल गये। उन स्टेशनों पर यह गाड़ी नहीं रुकी ! वह एकप्रस है, बड़े-बड़े स्टेशनों पर रुकती है छोटे-छोटे स्टेशनों पर रुकना उसकी शान के रिचाफ है। खैर, यह कहाँ रुकेगी कहाँ नहीं, इससे रामेश्वर को काइ सराफार नहा। उसको चलते जाना है, चलते जाना है यहाँ तक, जहाँ तक नह गाड़ी जाय। और फिर ? देखा जायगा फिर। शयनागार। खट्-खट्-खट्ट की आवाज़ें। रजनी चली जा रही है पीचे बिल्नी की तरह दबे पाँव। वह सडा है सीने पर। दो छाया मूर्तियाँ लिपटी सड़ी हैं दालान म। 'अच्छा, यह गुल खिल रहा है।' छाया-मूर्तियाँ अलग हो गई हैं एक दूसरे से। यह गापाल म पीट रहा है। गापाल भागा जा रहा है अपना डूक लिये। शयनागार। वह चना बैठा है रजनी के पेट पर। गला दबा रहा है रजनी का। उसकी आँसु का यह दीन, कातर भाव—दिल में बछाँ की तरह घुस जानेराना वह भाव ! थोड, कैसी भयानक गरमी है ! दम घुटा जा रहा है। कितना सुत है यह गाड़ी ! तेज़ी से, रज तेज़ी से यह क्यों नहीं चलती !

गाड़ी की चाल धीमी पड़ती जा रही है, बराबर धीमी पड़ती जा रही है। क्या बात है ? क्या बात है ? अब क्या होगा—क्या होगा ? ऐं ! टेरों गाइनों ! लाइनों का जाल बन्ता जा रहा है। मित्रों ही सिगनल इधर उधर गड़े हैं। उधर वह सिगनालों का काम है। जरूर कोई बड़ा स्टेशन आ रहा है।

हाँ, बड़ा स्टेशन आ रहा है। गाड़ी की चाल बहुत धीमी हो गई है। वह प्लेटफार्म दिखाई दे रहा है। वही भीड़ है प्लेटफार्म पर ! ला, आ गया प्लेटफार्म। रुक गई गाड़ी। पाल दिया धावा मुसाफिरों ने। डिब्बे का दरवाजा खुल गया पट से। यात्रियों का रेला घुसा आ रहा है डिब्बे में। 'अरे, ठहरा, ठहरा। दूसरे डिब्बे में जाओ—दूसरे डिब्बे में जाओ। यहाँ जगह नहीं है—जगह नहीं है।' लेकिन कौन सुनता है किसी ? एक पर एक गिरा पड़ रहा है।

गाड़ सीटी दे रहा है। डिब्बों के दरवाजे पट पट बन्द हो रहे हैं। गाड़ी रमाता होने को है। ला, चल पड़ी गाड़ी। ऐं ! डिब्बे का दरवाजा खोलकर यह कौन अन्दर घुस आया ? टी० टी० आई० ! गजन हो गया !

“टिफ्ट दिखलाइये, टिफ्ट !”

गाड़ी तेज़ी से चली जा रही है। टी० टी० आई० टिफ्ट जाँच रहा है। अब वह इधर आ रहा है।

“टिफ्ट दिखलाइये, टिफ्ट !”

रामेश्वर चुपचाप बैठा रहा।

“आपसे कह रहा हूँ, जनान !” रामेश्वर का कधा पकड़कर टी० टी० आई० ने कहा—“टिफ्ट दिखलाइये !”

“मेरे पास टिफ्ट नहीं है।”

“टिफ्ट नहीं है, तो निरालिय रुपये !”

श्रीर टी० टी० आई० ने शुभ्र जेब से पेंसिल और रिमीट-बुफ निकाल ली।



“निमालिये नौ रुपय गरह आने ।”

“रुपय मरे पास नहीं हैं ।”

“अच्छा ! टिकट भा नहीं है और रुपये भी नहीं हैं ! यह कहने से काम न चलेगा, हज़रत ! रेलवे आपने पाइ-पाइ वसूल कर लगी ।”

गमेश्वर निस्तब्ध बैठा रहा ।

“ठहरिये, अभी मतलाता हूँ ।”

वह अथ मुसाफिरों के टिकट देवने लगा । दिब्बे के तमाम मुसाफिर रामेश्वर को गौर से देख रहे हैं । कोई आश्चर्य से आँसों पाड़े हुए है । रामेश्वर गढ़ा जा रहा है, सिमटा जा रहा है ।

अथ मुसाफिरों के टिकट देकर टी० टी० आइ० रामेश्वर की कमाल में आ बैठा है । बड़बड़ा रहा है वह—“यह सफेदपाशी और यह हरकत ! कैसे-कैसे धूत, घोपेबाज़, आगारे रेलवे का ठगते फिर रहे हैं ! टिकट नहीं खरीदेंगे, लेकिन सफर इस तरह करेंगे, जैसे गाड़ी उनक अन्जान की हो !”

बडबड़ाता जा रहा है टी० टी० आइ० । अगर रजनी की तरह इस टी० टी० आइ० का भी ! ओह ! नहीं-नहीं ।

अगला बग स्टेशन आ गया । रामेश्वर का हाथ पकड़कर टी० टी० आइ० उसे गाड़ी से उतार ले गया । वह वहाँ लिये जा रहा है उसे ?

स्टेशन मास्टर का कमरा है । रामेश्वर का हाथ पकड़े टी० टी० आइ० अन्दर घुसता है । फिर एक ओर उसे खडा करने, वह एक अफसर के पास जानर उससे बातें करता है ।

वह अफसर रामेश्वर से कई प्रश्न करता है । रामेश्वर चुपचाप खडा रहता है, किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देता । टी० टी० आइ० बाहर चला जाता है । दो कास्टेबिल अन्दर आते हैं । वे रामेश्वर क हाथ पकड़कर, उसे गहर ले जाते हैं ।

गाड़ी चली गई है। स्टेशन सुना जाता रहा है। प्लेटफार्म पर पड़ी हुई एक बेंच पर उन दो कान्टेनिलों के बीच रामेश्वर निस्तब्ध, मूर्तिमत् बैठा है। मस्तिष्क में विचारों का नूफान उठा हुआ है, लेकिन उन विचारों में वह किसीको शरीर नहीं कर सकता।

“सफर करने चले और जेब में पैसा नहीं ! क्या गाड़ी अपने चाबों की समझ रती थी ?”

रामेश्वर कुछ नहीं कहता।

“कहाँ रहते हो ?”

रामेश्वर रामोश।

“क्या करते हो ? कौन लोग हो ?”

रामेश्वर जैसे ही गुम-मुम बैठा रहता है।

“घर बार है ? बाल बच्चे हैं ?”

रामेश्वर मुस्करा देता है।

“अरे, यह तो पागल मालूम होता है !” एक कास्टेबिल कहता है।

“नहीं जी, कोई बात हुआ टग है।”

कास्टेबिल किसी धरेलू मामले के सम्बन्ध में बात करने लगते हैं। रामेश्वर उसी तरह निस्तब्ध, गुम-मुम बैठा है। विचार धारा चल रही है मस्तिष्क में। अन्दर जैसे आग मुलग रही है। सारा शरीर जैसे झुलसा जा रहा है।

“में जरा धर जाता हूँ, रामसुमेर !” एक कास्टेबिल ने कहा—

“दस मिनट में लौट आऊँगा। तब तक तुम इसे देखना।”

“जल्दी आना, उपागिर !”

“बहुत जल्द आऊँगा।” वह चला गया।

कई मिनट बीत गये। दूसरा कास्टेबिल ऊँघने लगा। दस मिनट में उसका तिर बेग की पीठ पर टिक गया और वह खुरटि मरने लगा।

इधर-उधर दग्धर गमश्चर धीरे से उठा और दवे पाँव चार कदम चलकर फाटन की आर लपका। ज़रा देर में वह स्टेशन के बाहर पहुँच गया। अब कौन पकड़ सकेगा उसे ?

सूना सड़क है। रामेश्वर दौड़ता चला जा रहा है। नगर बहुत पाछे छूट गया है। कितनी देर से वह दौड़ रहा है, कै मील दौड़ चुका है, उसे कुछ पता नहीं। अन्दर आग सुलग रही है, गला सूखा जा रहा है। पानी मिलाता चादिये, पौरन मिलना चादिये। उधर वह क्या दिखाने दे रहा है ? शायद काद गाँव है। हाँ, कोद गाँव। यहाँ ज़रूर मिल जायगा पानी।

गोव आ गया। एक ओर एक कुँये पर एक आदमी पाती भर रहा था। रामेश्वर धीरे धीरे कुँये के समीप गया।

“ज़रा मुझे पानी पिला दो, भैया !”

“अच्छा, गाबूजी !”

ग्रामीण ने उत्साहपूर्वक पिला दिया पानी। अच्छा तो नहीं लगा, लेकिन चित्त काफ़ी शान्त हो गया।

“स्टेशन यहाँ से कितनी दूर है ?”

“पास ही है।”

“तुमने बड़ी कृपा की मेरे ऊपर।”

“नहीं, गाबूजी, कृपा की इसमें कोई बात नहीं।”

“किस तरफ है स्टेशन ?”

“सड़क पर जाकर दाहिने हाथ की तरफ मुड़ जाना।”

“जय गमनी की !”

“जय गम, गाबूजी !”

ज़रा देर में वह फिर सड़क पर पहुँच गया और स्टेशन की आर तेज़ी से चल पया। अब दौड़ने की ज़रूरत नहीं। यहाँ कौन पकड़ने आयगा ?

बेमफा

१४८

अपने हाथों से। स्टेशन सामने आ गया। पाम पहुँचकर वह एक पड़क नीचे बैठ गया। स्टेशन पर नतीन लालटेन टिमटिमा रही थीं। सन्ताप की साँस लगर रामेश्वर पैर पैनाकर लेट गया।

कितना समय बीत गया ! रामेश्वर को कुछ पता नहीं चला। वह तो अपने अंदर उलझा हुआ था।

हलकी धड़धड़ाहट वायुमण्डल में गूँज उठी। धड़धड़ाहट बराबर आर पनड़ती गई। गाड़ी आ रही है—बेशक गाड़ी आ रही है। वह उठ खड़ा हुआ और धीरे धीरे स्टेशन की आर पता।

गाड़ी आ गई। मुगाविर-गाड़ी थी वह। आगे चक्र, इधर-उधर दृष्टि दौड़ाकर, रनिंग फाँदकर वह प्लेटफाम पर पहुँच गया। वह दिव्या का ध्यानपूर्वक देखता हुआ आगे बढ़ता गया। पहले दरजे के एक डिब्बे के समीप पहुँचकर उसने अन्दर भाँसा। उसमें एक यात्री था। वह एक बर्ष पर पड़ा सा रहा था। धीरे से दरवाना खोलकर रामेश्वर अंदर पहुँच गया।

गाड़ी ने सीटी दी। गाड़ी चल पड़ी। दरगाजा धीरे से उद करके वह बैठ गया। वह भद्र, सम्पन्न यानी उसी तरह साता रहा। उसकी बर्ष के नीचे एक बड़ा-सा सूटकेस रखा हुआ था और एक सुन्दर अटैची-केस। एक आर एक रूँटी पर एक काट टँगा हुआ था और ऊपर ब बर्ष पर एक टाप रखा हुआ था।

धड़ धड़ ! भरू भरू ! भरू भरू ! दौडती भागती, मील पर मील तय करती गाड़ी चली जा रही है। और वह यानी है कि उसी तरह विलकुल बेखबर सा रहा है। क्या वह इसी तरह साता ही रहेगा ! अगर वह जागेगा और उससे प्रश्न करेगा, तो वह क्या उत्तर देगा ! कह देगा वह जा कुछ ठीक जैँचगा। वह टी० टी० आई० नहीं है, रेलव का कोई बड़ा अधिकारी मी नहीं जान पडता। फिर उस कुछ कहने सुनने का अधिकार ही क्या है ! और अगर वह निवटगा चलेगा तो

व- निवृत्त भा लगा अच्छी तरह। इस समय वह सिटीत भी निवृत्त  
 यकता है।

फर छोटे-छोटे स्टेशन प्राये और निकल गये। और वह दावी  
 पैम हा गा रहा था। आखिर वाज क्या है! उठकर धीरे धीरे वह उस  
 वंश की ओर बढ़ा। पाठ पढ़ाकर, रुककर, मुककर, वह उस गौर  
 म वृत्तन लगा। मरिण पी हलकी-सी गंध उभरा गरु म पहुँची।  
 अच्छा, वह बात है। वह धीरे धीरे निर अपने स्थान पर आ बैठा।

गाड़ी की चाल धीमा पड़ने लगी। नितो हा सिगाट इधर-उधर  
 लड़े दिगाइ देन लगे। बाई बना स्टेशन आ रहा है। फ्लेपाम  
 दिगाइ देन लगा। म, आ गया अखर। वह उठकर निर धीरे धीरे  
 उस वंश क समाप्त पहुँचा। आगे बढ़कर उसो पाठ की जेवें टटोनी।  
 उमम था एक पाउनेन-पेन, एक सिगरेट-बस, एक दियाखलाइ का  
 बत्त, एक रुमाल। सिगरेट फेस और दियाखलाइ अपनी जेन में  
 डालकर और अटैची केस उठाकर वह दरवाजे के समीप लडा  
 हा गया।

गाड़ी रुकी। तुरन्त दरवाजा खोलकर वह पीछे की ओर लाइन  
 पर उतर गया। तेजी से कदम बढ़ाता हुआ वह काफी दूर निकल गया।  
 उस सुनसान स्थान में एक लाइन पर बैठकर उसने शीघ्रतापूर्वक वह  
 अटैची केस खाला। दियाखलाइ जला जलाकर वह दरसन लगा।  
 अटैची केस म छिन्की का एक चिपटा अडा था, नाटा का एक बरडल  
 था, पर्स था, चाड़े से कागज-पत्र थ। अडे म थोड़ी-सी शराब बाक्री  
 थी। शराब पीकर, नाटा का बरडल और पर्स अपनी जेन में डालकर,  
 अडा और अटैची केस एन गड्ढे म फेंककर वह एक ओर तेजी से  
 चन पडा।

जरा देर म वह स्टेशन के बाहर पहुँच गया। अब पैसे की तगी  
 उम नहीं रहेगी। माई टी० टी० आई०, रोथ का फोइ अन्य अखर  
 उसका कुछ नहीं दिगाइ सकेगा।

×

×

×

दो वर्ष बीत चुके हैं।

दिल्ली, लाहौर, पेशावर, कलकत्ता, मद्रास, कोलम्बो, बम्बई, कराँची—वह सारे देश की परिक्रमा कर चुका है। सदैव याना ही करता रहता है। हफ्ता, पन्द्रह दिन से अधिक वट कहीं ठहरता नहीं। ज्यादा दिनां तक कहीं ठहरना वह उचित भी नहीं समझता। उसमें खतरा जो रहता है।

यस पथ का वह पथिक है, वह थडा खतरनाक है। उसका अपना एक दल है—अपराधियों का एक दल। उस दल का वह सरदार है। धन की कमी नहीं है। ऐश्वर्य उसके पैरों पर लोटता है। बड़े ठाट गाट स, बड़े ऐश से ज़िन्दगी गुज़र रही है। लेकिन उसके अन्दर जा एक छाया-सा दैल है, वह पीटा से कराहता रहता है। शान्ति उसके लिये नहा है। सगा का ऐश्वर्य, जीवन की मधुरिमा, सुनहर दिना, रँगीली रातें—निखी चीज़ म उसे शान्ति नहीं मिलती। उसका कोई इलाज नहीं।

भय से वह मुन हो चुका है। उसके दुस्साहस की सामा नहा है। लाग उसके नाम से काँपते हैं। पुलिस उससे हैरान हा गई है। लेकिन जब उसे उस रात की याद आती है तो वह पत्ते की तरह काँप उठता है, सजा शय-सा हो जाता है। वह भूल जाना चाहता, सदैव व लिये भून जाना चाहता है—उस रात की बात को, लेकिन भूल नहीं पाता, निखी तरह भूल नहीं पाता। मदिरा की सहायता से विस्मृति आ जाता है कुछ समय के लिये, लेकिन सदैव के लिये नहीं।

रँगीली रात है। तारा चाह की सनी धनी बैठक है। गान्धिन्दे सात मिला रहे हैं। माइजा रामो बैठी, छत्रि की मधुरिमा की लहरें धिरोर रही हैं। हिस्की और पान एग्लि से भरे शारो के गिलास म बफ क टुकड़े धरिदिया की तरह डुनडुना रहे हैं। दर्द की टीस अन्दर माजूद है, निर भा सब कुछ बड़ा अच्छा लग रहा है।

गिरगिर उठ रहा है धारे धार आगे की आर। नञ्ज अमी कात्री नहीं हैं, शीर पाते की जलगत है। अरे, यह पुष्पांशा क्या उठ रहा है गिलास के अदर। पुष्पां इट रहा है। यह क्या है—यह क्या है। बाइ दश्य—यदी दश्य—यदी दश्य। शयानागर है। रजनी अरती अन्नाद पर पड़ी हुइ ह। यह उसके मेरु पर चढ़ा बैठा है और उसके हाथ फने ना रहे हैं रजनी क गले पर। आंशों में अन्नाद तिम भरे हुए रजनी उगमी आम देग रही है—दीन, कातर दृष्टि से।

साज नन गे हैं। गइनी गा रही हैं। सेठिन साप्र-साप कुछ भी नहीं गुनाइ दे रहा है। यह आंशों पाते देग रहा है गिलास क अदर। दिल पर रंझियां बल रही हैं। अर रंगा नहीं जाता—देगा नहीं जाता।

उसो बतपुत्र अंगिं गन्द कर लीं। गिलास उसके हाथ से छूट कर पथ पर गिर पड़ा, यह मखनद पर छुड़क गया।

गाना बन्द हो गया। साजिन्दों ने साज रग दिया। बाइनी क हाश उठ गये।

“अरे यह क्या हुआ—क्या हुआ? पानी लाओ—परा लाओ।” बाईजी रामेश्वर का सँभाल रही है। रामेश्वर आंशों बन्द क्रिय निश्चेष्ट पड़ा है। एक मीठसी पानी लाने दौड़ा जा रहा है, दूसरा पखा लाने भागा जा रहा है।

जल के छीटे दिये गये। परा मना भया। जरा देर के बाद रामेश्वर ने आंशों खाल दीं।

“कैसी तरीकत है!” बाईजी ने गिन्तित रर में पूछा।

“अन ठीक है।” उठते हुए रामेश्वर ने उत्तर दिया।

“लटे रहिये—लेटे रहिये।”

सेठिन वह उठकर बैठ गया।

“क्या तकलीफ हो गई थी?”

“चक्कर-सा आ गया था।”

वह उठन लगा।

“बैठिये—बैठिये। कहाँ जा रहे हैं आप?”

“अब माफी चाहता हूँ।”

उधर जाकर वह जूते पहिनने लगा। लपक कर बाइजी ने उसका हाथ पकड़ लिया।

“रात अभी शुरू हो चुकी है और आप चले जा रहे हैं। आपने तो आज यहाँ रात भर रहने का इरादा जाहिर किया था।”

“माफ़ करो। किसी दूसरे दिन आऊँगा।”

बाइजी के हाथ में दस दस के पाँच नाट देकर वह धीरे धीरे नीचे उतरने लगा।

“जरूर आइयेगा, मोहन बाबू! इन्तजार करती रहूँगी।”

“जरूर आऊँगा।”

जिसी तरह मड़क पर पहुँचकर वह एक ताम पर सरार हो गया।

“नरानल शटल चलो।”

“बहुत अच्छा, हुआ।”

तागा चल पड़ा। हवा के माँस लगने लगे। चित्त कुछ हलका हुआ।

कैसी विचित्र है यह माया की नगरी! यहाँ कोई किसीका नहीं होता। रजनी उमरी नहीं हुई, वह रजनी का नहीं हुआ। रजनी ने बेगमाई की, उसने उसका गला घाट दिया। प्रणय, प्राप्ति, त्याग, तपस्या—इन सबका यहाँ कोई महत्त्व नहीं। यहाँ तो बस, स्वार्थ ही स्थाय है।

जावन की उम्र अग्रिम घड़ी में रजनी ने क्षम पावना का थी। वह उसे सत्र कुँड दे चुका था। उमरी अग्रिम भाग क्या वह पूरी नहीं कर सकता था? काश! उसका उसे जमा कर दिया होता। कितना पावन, मित्रता मुन्दर ...



मंमल जाती। न मुबरती, ता वह उमे त्याग देता। उड़ा कड़ुया क्षता  
 गमना वह त्याग—वेशन रहा कड़ुया होगा। रोकिन उसक जानन म  
 याज जा कड़ुयापन भर गया है, उसक मुयागले में ता शायद वह  
 कड़ुयापन कुछ न क्षता। जाने क्या क्षा गया था उमे उस समय।

किस नाम का है यह जीना ? अफगाध पर अफराध—नित्य-नया  
 अफराध ! हर घटी बचते रहे, भागत रहे, छिपते रहा। और-छार नहीं  
 ह इस दीड़ भाग का—लुका छिपी का। इन् लान, पर-लोन—सब  
 निगड गया।

वैस सुन्दर थे व दिन, जा रजनी की सगनि म व्यतीत हुए थे।  
 पैसा मुग्य जानन म कभी नहीं मिला। मदिरा, नारी, धन-दौलत, श्राव  
 सब-कुछ प्राप्त है, लेकिन वैसा मुख कहीं कभी नहीं मिलता। रजनी !  
 प्यारी रजनी !

रजनी की आसों ना वह भाव ! और ! वह भाव ! उसे वह सह  
 नहीं सकता—किसा तरह सह नहीं सकता। दारुण से दारुण बनना  
 वह सह सकता है, लेकिन उसे वह सह नहीं सकता—किसा तरह सह  
 नहीं सकता।

हॉटल पहुँचकर, अपन कमरे में जाकर, बत्ती जलाकर, उठने  
 दरनाजा उन्द कर दिया। फिर कागज का पैड और पाउण्डेनपन लेकर  
 वह मेन पर जा बैठा और निरतों लगा अपनी आत्म-कथा। वह क्या  
 लिख रहा है अपनी आत्म-कथा ? इसलिये कि अपने भेद प्रत्य वह  
 अपने ही तन साभित नहीं रखना चाहता।

वह लिख रहा है पूरा तलनीनता सं। क्लम चल रही है धीरे धीरे  
 कागज पर। तजा से वह नहीं लिख सकता। लिखने ना उसे अभ्यास  
 नहीं है। अपने भाषा को सनात-सँगरन की कला से वह परिचित नहीं।  
 वह लिख रहा है अपनी उग्रही लिखन भाषा में सतायोगपूरक। सारी  
 बतें प्रिस्तरपूरक कागज पर उतर रही हैं। प्राय वह सब कुछ लिख  
 डालेगा। प्राय कोई बात छिपाय गनी की जम्मत नहीं गी।

धनी की सुदर्याँ धीरे धारे चल रही हैं। बारह—एक—दो—तीन ! इतक निरपता रहेगा वह ? अब समय अधिक नहीं रहा। अब समाप्त र देना चाहिये, शाम्र हा समाप्त कर देना चाहिये यह कार्य।

एक घटा और निकल गया। अन्तिम शब्द निरकर, उठकर, टहन हाथ-पैर सीधे किये। फिर उस त्रार जाकर, सूट केस खोलकर उसन द्विस्की का अद्दा निकाला और एक गिबाल्वर। गोलियाँ भरकर गिबाल्वर में रग दिया और अद्दा खोलकर एक सास म सारी शक्ति पा गया। फिर उसन एक सिगरेट जला। सिगरेट उसे बहुत प्य है। अन्तिम बार एक सिगरेट पी लेने की इच्छा भी पूरी हो लगी चाहिये।

धुने क मुखुरे फँकता हुआ वह कमर में टहलता रहा। सिगरेट खाने हा गई। सिगरेट का जलता हुआ टुकड़ा एंश-ट म फँकर, उसने गिबाल्वर उठा लिया।

निराना सध गया।

“रजनी ! प्यारी रजनी ! अपने जीवन की अन्तिम घड़ी म तू मुझसे बना-याचना की थी। म तुझे क्षमा नहीं कर सका। इस रात का मुझ परिक खेद है। अब म स्वय तेर पान थाकर तुमसे क्षमा मागूँगा। अगर मने सच्चे दिल मे तुम प्यार किना है और उसी अटल प्रेम के प्रणु तरी हत्या की है, तो मुझ निरास है कि तू मुझे अश्य क्षमा कर देगा। रजना ! प्यारी रजनी !”

धायेँ ! धायैँ !

गिबाल्वर हाथ से छूटकर फर्श पर गिर पडा। रामेश्वर पलंग पर गिर गया।

उसके सारे से खून के पव्यारे छूट रहे थ। लेकिन उसक आँटा सुलान खे रही थी, फेदरे पर शान्ति बरस रही थी।

हैटल में बानादित मग गया था। रांग हथर उपर दीड रहे क दूसरे म प्ररन

## “नहीं बनूंगी कंटक”

मिशन के रंगों पर युद्ध-यात्रा भयानक गति में तालमेल प्राप्त कर रहा है। यक्ष उष्ण देश के जाये है, भारतीयों पर अच्छा ध्यान पाने लगा है। पोलियो का विनाश हो गया, मेल, हार्ड, वैज्ञानिक और नार्वे शरीर का गण, प्रांग पराजित होकर, सुरी उर्वर प्राद्व हाकर, तद्वर रहा है। फ्रान्स मिशन अभी तक मिसन में डूब गया है। नाज़ीवाद गमल समार का विगलकर अपनी तात्कालिक प्रयत्न करना चाहता है। मिशन स्वाधीनता और जनता की शक्ति का प्रतीक बन रहा है। एक और है शक्ति का भयावह उन्नाद—दूरी और है अस्मिन् धर्म, अस्मिन् जन, गन्धीर सार्वभौमिक।

पराधीनता के बंधनों में खड़ा हुआ भारत सोच रहा है कि इस युद्ध के बाद वर्तमान व्यवस्था के अभाव से जिन नतीजों का जन्म होगा उसमें उचित स्थान क्या होगा। उसने शासक सुदूर, आगापूर्ण भविष्य की ओर इतिहास कर रहे हैं। और भारत उस भविष्य की ओर सदेहपूर्ण दृष्टि से देख रहा है। एक बहुत बड़े बग का मत है कि हमें विना किसी शर्त के ग्रेट ब्रिटेन की सहायता करना चाहिये।

ऐसे ही लार्ड में एक ही उद्गमोदन कपूर। युद्ध के आरम्भ काल ही से उसमें मांग लगे के लिये वह तत्पर रहा था। अन्तर प्राया। वह भारतीय हवाई सेना में मरती हो गया। थोड़े ही समय में भारत में अपना शिक्षा का सारा बोझ उसी समाप्त कर दिया। तब विशेष शिक्षा के लिये वह इंग्लैण्ड भेजा गया। वहाँ भी उसने वैनी ही तेज़ी दिखाई। कुछ दिनों की शिक्षा के बाद ही वह समस्त परीक्षाओं में



दोनों के बीच का है। मुझे का मायानि के पत्रों पर लौटकर प  
उम वृत्त उदा अथा बना लगा, और एक मय, मन्मथित मरुतम को  
भीत जरा कर्तित केगा।

X

X

X

17 मरुत । मरुतों का, वायुना पत्रों पर रह। गेवा का  
भगवान् मरुतों की वृत्ति दिल दिव उठती रही। तागे पर, मुलकर  
लड़ाई हुइ शत्रु की मारा भाग किया। मिथि सना भी आगे बढ़ी।  
डटकर मुझे हा लगा। टैंगों से टैक भिड़ गया। गाणियों की शौद्धरों  
चला लगा। लड़ाई और धम-धमक वायुना हुइकिये लगा लगाकर  
धम और गाणियों परमाणु लगे। पैदल सैनिक गडगिला पर सगीने धम,  
कर दिन पर। मरुतों के पर गाणियों उन्हें रौंदा लगा। भगवान्  
मरुतों का साकार गर्भ हो गया। वास्तु और पेट्रोल के धुँ से धम  
मएडल भर गया। फिर दुश्मन के पैर उगड़ गया। कितने ही टैक,  
यहउरखद मरुतों, मरीनगनें, टैंग अथ सामान, हज़ारों अइत तथा  
गृह मैनिक छोड़कर शत्रु-सना भाग निकली। और उसे अत्यधिक  
क्षति पहुँचाई गई।

रात हो गई है। मिथि मेरा का पड़ाव है। मैनिक विभाम कर  
रहे हैं। धम छाते सेर के सामने एक कुरसी पर बैठा हुआ नद्रमोहन  
चाय पी रहा है। उसके सामने एक छाया-भी मेज़ पर टैम्ब, भाप देती  
हुइ चाय से भरा पात्र और उबाले हुये गड्डे रखे हैं। दिन भर के  
कठिन परिश्रम से वह बेतरह थका गया है। अब वह कुछ देर आराम  
करेगा, ताकि उसके हुय शरीर में फिर ताज़गी आ जाय। प्रायः दुश्मन  
के दौल रट्टे हो गए। एनी करारी हार साम है कि याद करेगा। इसी  
तरह धराधर जीत हानी जाय, ता बोड़े ही मिथि में उबका जश टण्डा  
हो जाय और मुझे तैककर गिड़गिड़ाना नज़र आये। जमकर लड़ने  
ही से नाम बलोगा। खूब पर-परकर आक्रमण करना चाहिये। पात्र

उठा कर वह चाय पीने लगता है। एनाण्ड एन सैनिक उसके सामने आता है और कायदे में सलाम करता है। सिग हिलारर चन्द्रमोहन उसकी आंग प्रश्न सूचक दृष्टि में देखता है।

“जनरल स्टेक आपने मितना चाहते हैं, मिस्टर कपूर।”

“अच्छा।”

“दस मिनट में उनके पास पहुँच जाइये।”

“बौरन आता हूँ। चलो।”

सैनिक चला गया। चाय का पान मेज़ पर रखकर, उठकर, सिगरेट जलाकर, वह तज़ी से चला, जनरल स्टेक के चैने की ओर।

पाँच मिनट बाद कई सदयामियों के साथ वह उपस्थित हुआ जनरल स्टेक के सामने। जनरल महोदय के सामने मंज पर एक नक्शा फैला हुआ था, और वह उसे ध्यान से देख रहे थे। अभिवादन के बाद उन्होंने कहा—“अब लाभ थक तो ज़रूर गये हैं, लेकिन मुझे भय है कि मुझे आपका रुष्ट और देना पड़ेगा। एन बहुत ज़रूरी काम अकस्मात् आ उपस्थित हुआ है, और वह तुरन्त किया जाना चाहिये।”

एक दृश कम्पनर नकशों में एन स्थान पर इशारा करते वह गले—“एन स्थान दक्षिण परिमम की ओर करीब तीन सौ मील की दूरी पर है। यहाँ एक बड़ा घना जंगल है। जंगल के बीच में खास सौर से तैयार किया हुआ एक गुला मैदान है। मुझे अभी थोड़ी देर पहले सूचना मिली है कि यह स्थान दुश्मन का एक छात्रा है। यहाँ एक हवाई छात्रा है, पैडल के यंत्र-यंत्रों से है, सड़ और गाले गारुड की गादों में हैं, ग्रेट दल, मोटर दल और पैडल डुकड़ियाँ का भारी जमाव है, इस पड़ाव पर आप लोगों का तुरन्त धारा करना होगा। अगर हम इसे नष्ट कर सकें तो शत्रु बहुत दिनों तक सँभल न सकेगा और हम मन्वतापूर्वक प्रत्याक्रमण कर सकेंगे। परन्तु यम-दपक और लड़ाई कायपाती का दल जायगा। मिस्टर कपूर और मिस्टर

आप दोनों उस दल का नेतृत्व करेंगे। मुझे आशा है कि आप लोग अपना फल गूरी से अदा करेंगे। अब आप लाग जा सकते हैं।”

मजाम करके वे गहरे गिबले। पट्टे पिनट में वायुयानों का दल तैयार हो गया। सिगनल हुआ। सुरड के सुरड हवा में जहाँ जहाँ न भयानक शोर क बीच जमीन से उठ उठकर आकाश में उड़न लगे। दल चल पड़ा।

चाँदनी गत थी। आकाश सफ था। उड़ा मंगोरम दृश्य था चारों ओर। नाचे सीकर्ट मीन वर पैला हुआ रगिस्तान चाँद की तरह चमक रहा था वह दल चला जा रहा था दोमौ मीन प्रति घण्टे की गति से। सबसे आगे थे दो मम-वपन। एक पर सवार था चन्द्रमोहन, दूसरे पर जानसन। उत्तर में रिला हुआ था चन्द्रमाहन का चहरा, निकट स्फूर्ति दौड़ रही थी उसकी नस-नस में। यन्त्रावट बिलकुल गायब हो चुका थी।

एक घंटे के बाद वे एक पहाड़ी प्रदेश के ऊपर पहुँच गये। थोड़ी देर के बाद पहाड़िया का सिलसिला खत्म हो गया। एक छाट से पथ सीले मैदान के बाद माला तक पैला हुआ एक सघन वन था। रेटिया के द्वारा जानसन ने पूछा—“कपूर! यही ता मालूम होता है वट जगल ?”

“बेशक।”

“आभिमण का समय आ गया ?”

“जरूर।”

“कुछ उतरकर देखना चाहिये ?”

“उतरो।”

दोनों मम गर्पको ने दुरन्त कुछ उतरकर बड़ी तेजी से एक चकर लगाया। निस्सन्देह वही था दुरमन का वह पड़ाव। जगल के बीच में मैदान था, और उसके एक सिरे पर कई हवाई जहाज खड़े दिखाई

दे रहें थे। चन्द्रमाहन ने परामर्श करने के बाद जानसन ने सिगनल दिया। हमारा शुरू हो गया। ब्रिटिश मम-वर्षक और लड़ाई विमान होते लगा-लगाकर मम और गोलियों की बरसात करने लगे। शत्रु सचेष्ट हुआ। उसकी वायुयान विध्वंसिनी तापें चलने लगी। एक गोला चन्द्रमाहन के विमान की बगल से निकल गया। मुद्दर चन्द्रमाहन ने वह मम गिराये। भयानक विस्फोट हुआ। चन्द्रमाहन का विमान भी क्षित गया। अग्नि की ऊँची ऊँची लपट उठने लगी। आग तेज़ी में फैलने लगी। चारों ओर दिन ज़ा-सा प्रकाश आ गया। आत्मगण करना और भी सगल हो गया। घड़ाके पर घड़ाके धाने लगे। पेट्रोल के टर्कों में आग लग गई, रसद और अन्न सामग्रियों के गोदाम भी जल उठे। इस तरह आध घंटे तक आक्रमण होता रहा। शत्रु के अनेक लड़ाई वायुयान, जो बेमार नहीं हुए थे, उठने में सगल हुये। चन्द्रमाहन उनमें नामने पड़ गया गालियों का बौछार आइ उसके वायुयान पर। आहत हुआ वह, और क्षति पहुँचा उसके वायुयान का भा! पर इजन बेकार हो गया, पेट्रोल का टर्की चूने लगी। एक गोली उसके बाईं गेह में लगी, एक दाहिनी जाँघ में। तीव्र पीड़ा का अनुभव हुआ उसे, और उसके घावों से रक्त तेज़ी में बहने लगा। किन्तु वह उसी तरह उचने और हमला करने में लगा रहा। ब्रिटिश लड़ाई यान भिड़ गये दुश्मन के यानों से। रेडियो द्वारा जानसन ने पूछा, “मैं समझता हूँ कि हमारा अभिप्राय सिद्ध हो गया। अगर तुम्हारी राय हो तो हम अब वापस चलें।”

“ठीक है, काम हो गया। वापस चलो। मैं जल्दी हो गया हूँ, मेरे वायुयान का भी क्षति पहुँची है। लेकिन कैम्प तक पहुँचने की काशिश करूँगा।”

“मेरी सहायुग्नी और महान् ब्रिटिश सेना का सहस्र तुम्हारे साथ है।”



मिगल दिना गया। दल दापत चल। रण घटा जा रहा था  
 चन्द्रमहान व अरुणा म, भयानक पीडा हा रही थी उतम। बापुयान  
 भी पावर नही चल रहा न। किन्तु यह सना जा रहा था अपूर्ण  
 मरणा, दन्ता और गास ।। शत्रु व फड पापुयान टूटकर गिर  
 गये। जो दा वार उचे, दुध दूर तक पीडा करने के बाद वापस लये।

ये घट के बाद अपना पता दृष्टिगार हुआ। गदरा ऊपर  
 गिर आय गये। बापुयान उतरने लगे। वनन दे तुकी थी चन्द्रमहान  
 की शक्ति। किन्तु निरुद्वेज लक्षण पर वह उत्तर साया अपना  
 यान जमीन पर। फिर अपना हा गया यह। दौड़ पड़े उसका सहयोगी।  
 वान से उतारा गया वह और स्ट्रेर पर हादकर अस्तगत पहुँ  
 चाया गया। मुक्त आपदेश पर अस्तगत ने उसका शरीर से  
 गालियाँ निकाल लीं। मरणा-घटा की गई।

कई घट गिन गये। लकिन उसे हास नहीं आया। ताड़ी कमजोर  
 पड़ ग, दिल पैरन लगा। भुला लगा वह जीन और मृत्यु के  
 बीच। चिन्ता बन गई डाक्टरों की। रक्त प्रवण कराया गया उसके  
 शरार म।

चन्द्रमहान व अमाधारण धैर्य की, साहस की, वीरता की भूरि भूरि  
 प्रशंसा भी रही थी समस्त वैश्य मं।

×

×

×

सुपमा नारी है, और उसका नागत्व वा एक ममत्व है जिसका  
 आर छार नहीं है। उसका यह निस्सीम ममत्व केन्द्रित हो चुका है  
 एक व्यक्ति पर। साहसी है, वीर है, याददा है वह व्यक्ति। गर्व है उस  
 उसके ऊपर। निकट नहीं, बहुत दूर है वह उससे। खद का विषय  
 है वह उतम निष्ठा। काश, उसके समीप होती वह ! किन्तु यह दूरी कम  
 नहीं कर पाता उसके ममत्व की मात्रा का। निष्ठुराई वह ! नहीं, नहीं।  
 वह पुरुष है, आर चल रहा है अपने दम से जीवन के पथ पर। इससे

निपरीत आचरण ग हाता उसने पुरुषत्व के अनुकूल। वह प्यार करती है उस पुरुषत्व को।

दो महीने से उसका कोई पत्र उसे नहीं मिला। निरुल है, व्यथित है, पाटित है वह। पत्र पर पत्र लिखती है वह उसे, किंतु उत्तर नहीं पाती किसी पत्र का। तब एक पत्र लिखती है वह भारत के प्रधान सेनापति को। सूचना आती है पत्र पत्रवारे के बाद सेना विभाग से—पायलट चंद्रमोहन उपर सख्त बीमार है। उसकी दशा सन्ताप जनक है। चिन्ता का काह नारण नहीं है।

चिन्ता जाती जाती है उसकी। क्या रोग है उसे? कब से बीमार है वह? क्या बीमार है वह? फिर पत्र लिखती है वह सेना विभाग को। उत्तर आता है कुछ समय के पश्चात्—पायलट चंद्रमोहन कपूर के सम्पर्क में जितना बतलाया जा चुका है, उससे अधिक बतला सकते हैं सेना विभाग अस्मय है।

चिन्ता जाती है वह असम हुनस। पुलने लगती है वह अन्दर ही अन्दर। परिणाम भाग रही है वह अपना नियोक्ता। किंतु किया क्या है उसने? कौन ददें-सर मोल लेता है जात ब्रूकर?

×

×

×

करीब करीब अन्धे हो गये हैं चंद्रमोहन के धान। लेकिन जब अक्सर आ जाता है। स्नायु रोग भी पूरी तरह दूर नहीं हुआ है।

मिग के एक बड़े सैनिक अस्पताल में वह राग शय्या पर पड़ा रहता है। बड़े बड़ से सेना शुभ्रता हो रही है। डाक्टरों की सम्मति है कि उसकी दशा सन्ताप तक लग से सुधर रही है। उसके पुराने सहकर्मी उसके प्रति उदासीन नहीं हैं। जनरल स्टैफ स्वयं देखा था और उसे गौरवान्वित कर चुके हैं। सहायता जानकर अस्मय उसके पास आता है। उगा बतलाया था उस कि उन लोगों का वह आक्रमण पूर्ण तरह सम्पन्न हुआ था। उस वन में पट्टित शत्रु के सम्पर्क साधा



है उसक मुग से उसकी जीवन-कहानी। किंतु न जाने क्या, लिलियन गल जाती है उस प्रिय का होशियारी स।

एक दिन पूरी हो जाती है उसकी यह दुःखा। शाम हो गई है। दाना गंठ है एक भाड़ी क पीछे पास के हर, फामल फरा पर। शीतल, मंद समोर उठ रहा है। रुचिर गारता व्याप्त है वायुमण्डल में। चल रहा है वात्सलाप।

“अच्छा, चंद्रमा, आज नहीं टालूंगी तुम्हारा अनुरोध। प्रिय मुझ प्रिय तो नहीं है, किंतु आज यह वैसा अप्रिय भा नहीं लग रहा है। तुम मुझना ही चाहते हो, तो मुझसे देती हूँ अपना जीवन कहानी। मैं खास बात नहीं हूँ इसमें, लिलियन मामूली है यह कहानी। मुझे दाप न देना, अगर इससे तुम्हारा मनोरंजन न हो।”

“धन्यवाद! मनोरंजन मरा उद्देश्य नहीं है, लिलियन!”

“गर्लब्रद के उच्च मध्यम रंग के एक प्रान्छित परिवार से मरा सम्बन्ध है। रुचिता ही मेरी माता का देहांत हो गया, एक रातमया चाची ने मेरा पालन-पोषण किया। मेरे पिता उन्हें आवश्यक खर्च देते थे। उचित शिक्षा-दीक्षा मिलती थी मुझे। निर्धन न एकाएक फिर आ गया। मेरे पिता का भी अस्मात् देहांत हो गया। उस समय मैं अपने सोलहवें वर्ष में थी। काइ सम्पात्त नहीं छाड़ी मेरे पिता ने मेरे लिये। चाचा जी आर्जिव दशा भी सम्पात्त न था। इसलिये निवश हाकर पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी। अब तीसरा सालने लगी मैं। कई जगह आर्जिव भेजा, किंतु अफल रही।

तब मैं देहांत का ल-दन चली गई। लन्दन में शांत ही मैं गलल हूँ। एक बड़े कारखाने में जनरल मैनेजर, मिस्टर एला फोर्बे, को एक प्रान्छट स्टोरी की आवश्यकता थी। भेंट करके के बाद उन्होंने मुझे लाना मुझे। यतन अच्छा था। आर्जिव विभागीय स मुझे हो गई मैं। मेरे साथ

वानरे का पवदार बूढ़ा सौजन्यपूर्ण था। मैं उनका आदर करने लगी। संपूर्ण हृदय से। धीरे धीरे दफतर से बाहर भी वह मुझ से भेंट करने लग। लन्दन के मत्तारक समाजिक जीवन में भी मैं परिचित होने लगी उनका द्वारा। घनिष्ठता बन्त लगी हम दोनों के बीच।

एक दिन देशन के मनोरम मातावरण में एक पिकनिक के आनन्द पर एलेन ने मुझसे विवाह का प्रस्ताव किया। अपने प्रति उनके प्रतिकूल होते हुए आश्चर्य से मैं भली भाँति पगिचिन था, और जानती थी कि नीरस कहा तक पहुँच सकती है। खलिये कुछ कुछ मैं तैयार हो पड़ल ह। मैं। गइ अपति मुझे नहीं दोगी। स्वीकार कर लिया मैंने एलेन का प्रस्ताव। विवाह का गभा हमारा आम्बरहीन ढग से। सुरती था हमारा वैवाहिक जीवन। किन्तु यह सुख प्रायम नहीं रह सका एक रूप से अपि। एक अपर नारी के रूप में एक सर्गिणी ने प्रवेश किया एलेन के जीवन में। अपराध के समय भी वह घर से गायन रहने लगा। उस स्त्री के प्रति जाती गइ उमड़ी आसक्ति। मर प्रति वह पूणतया उदात्तान का गया। एक दिन हम दोनों के बीच भारी झगड़ा हो गया। उससे अलग हाजर मैं चाची के पास चली गई।

एक गाली मामला तैयार करके उसने मेरे विरुद्ध अदालत में तलाक की अर्जा दी। मैंने पेरवी नहीं की मुकदम की। मन्त्र हा गइ उसकी अर्जी। तलाक का गया। अरकार छा गया मेरे चारों धार। फिर करनी पड़ी मुझे नौकरी। उजने विवाह कर लिया उस स्त्री से। एलेन भूत गया मुझे, लेकिन मैं भूल नहीं सकी उस। गद में मुना मैंने कि वह सतुष्ट नहीं है उम स्त्री से। लेकिन मुझे प्रयाजन क्या था इस बात से ?

बुद्ध जिन्। तुम्हारी तरह फाइलट बन कर वह भी सम्मिलित हो गया प्रियिग मना में। फर्नेटस के रणक्षेत्र में वह शत्रु सेना से लन्ता हुआ मरा। शाक में ह्व गइ मैं। तित दिन मुझे उसका मृत्यु की खबना मिली, उसा दिन सरकार का मंत्र अपनी सेवायें पूणतया अर्पित कर



“बेहतर है, जनाब ।”

उत्तर बढ़े स्नह में जारल स्टेक ने उमने हाथ मित्ताया । उनके इन गौराद से गद्गद हा उठा उठना हृदय ।

विदार का समय क्या क्या निवट आने लगा क्या-क्यों यदने लगी उगरी निकलता । उरास गदने लगी लिलियन भी । जाता यह नदी चल्ता, लेभिन खन की काइ सुत भी तर्दा है ।

फगल चार दिन शय है । शाम हा गद । आसीत है लिलियन और चन्द्रमोहन काडिया के पीछे अपने सुपरिचित स्थान पर । उदाण है समस्त वातावरण ।

“तो अब चले जाओंग, चन्द्रमोहन ?”

“जाता ही हे गा, लिलियन । आसा आसा है । काइ चारा नहीं है । विश्व हूँ ।”

हूक उठता है लिलियन के हृदय म ।

“ऐसा सुन्दर समय अब अभी मुझे नहीं मिलेगा, लिलियन । इनकी याद हमेशा मेर दिल म लाना रहेगी । तुम्हारी सगति से ना जुड़ मुझे मिला है उसकी हमेशा ब्रद कर्हेगा । कभी तुम्हें नहीं भूँगा ।”

आँसू टपकने लगते हैं लिलियन की आँसुओं से ।

“यह क्या करती हा, क्या करता हा, लिलियन ?”

झड़ी लग जाती है आँसुआ की लिलियन की आँसुओं से । आँसू छुनक आते हैं चन्द्रमोहन का आँसुओं में भी । टूट जाता है एफाएक दरी हुइ भावनाओं का बाँध । वह बाँध लेता है सहवा उसे कर-पाश म । वह भी लिपट जाती है उसके गले से ।

शान्त हाते हैं ये ।

“मेरी जनागी, लिलियन ?” उमना कामल हाथ अपने हाथों म खेतर पूछता है चन्द्रमोहन ।

“मन्गी, चन्द्रमोहन,” सरलता से मुस्कराकर उत्तर देती है जिलियन।

प्रयत्न करके अवकाश ग्रहण कर लेती है जिलियन। आखिर एक दिन मित्रा और सदयागियों से विदा लेकर दाना सवार हो जाते हैं जहाज़ पर। चल पड़ता है जहाज़।

चन्द्रमोहन के स्वास्थ्य पर समुद्र यात्रा का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। बम्बई पहुँचते-पहुँचते उसका स्वास्थ्य काफी सुधर जाता है। एक भाग तक लुहू में रहने के बाद वह विलकुल चंगा हो जाता है। डाक्टर उसे पूर्णतया निरोग घोषित कर देते हैं। रेंध जाते हैं विवाह के सूत्र में जिलियन और चन्द्रमोहन।

आदेश मिलता है उसे सेना विभाग से कि वह हवाई सेना में भरती होने गले नये पाइलटों को शिक्षा दे। रवाना हो जाता है वह सपत्नी कराची की ओर।

×

×

×

“सुपमा !” कमला ने कहा—“कुछ सुना तुमने ?”

“नहीं तो,” कौनूहल से तड़प उठी सुपमा।

“चन्द्रमोहन हिन्दुस्तान लौट आये हैं। उनके घर के लोग उनसे मिलने गये हैं।”

“निससे सुना तुमने !”

“विशार से।”

“कहाँ गये हैं उनके घर के लोग ?”

“कराची।”

“कब लौटे रह !”

“अधिक मैं नहीं जानती।”

भारत लौटकर भी उसने अपनी कोई सूचना नहीं दी उसे ! बात क्या है आखिर ! क्या अपराध हुआ है उससे ! स्वना कृपया विद्यविद्यालय में चल पड़ी वह घर की ओर।



जम गया एक निश्चय उसके मन में। वह स्वयं जायगी कराची, पता लगायगी उसके बारे में, भेंट करेगी उससे। माँ से पूछ लेना ठीक होगा ? नहीं, नहीं, स्वभावतः आपत्ति करेंगी वह।

कराचा जानेवाली ट्रेनों का पता लगाकर, वह पहुँची घर। चार मिनट पर जानेवाली ट्रेन से जाना-ठीक होगा। एक सूटकेस में वह भरने लगी कुछ आवश्यक सामान। कुछ कपड़े रखे, कुछ पुस्तकें रखीं, दो-चार अन्य चीजें रखीं, और रबी एक छोटी-सी शीशी। बहुमूल्य थी वह शीशी। एम० एस० सी० में पढ़नेवाला एक प्रिय सली की भेंट थी वह। "गुणमा", कहा था उसने, "वक्त पर वह तेरी सहायता करेगी। अगर कभी ससार के तमाम दरवाजे तेरे लिये बन्द हो जायेंगे, तो उस समय वह तेरे काम आयेगी। फूलों की सेज नहीं है यह दुनिया।" माता का नाम पत्र लिखकर एक घंटे के बाद वह खाना हाई स्टेशन की ओर।

चार बजे। ट्रेन आई। वह सवार हुए इतर के एक डिब्बे में। ट्रेन चल पड़ी ठीक समय पर।

तीसरे दिन वह पहुँच गई कराची कुशलतापूर्वक। कराची में चन्द्रमोहन कोद अज्ञात व्यक्ति न था। शीघ्र ही पता लग गया उसके घर का।

दिन का तीसरा पहर था। उसने प्रवेश किया चन्द्रमोहन के बँगले में। एक सेजक सामने आया।

"मिस्टर कपूर घर पर हैं ?"

"वह तो नहीं हैं, भैम साहब हैं।"

"वहाँ गये हैं वह ?"

"ढूँढ़ी पर।"

"वह मम साहब कौन हैं ?"

"अच्छा मवाल किया आपने ! कपूर साहब की बीवी हैं मम साहब। अभी हाल ही में शादी हुई है। खालिख अंगरेज़-है। बड़ी नव है। बड़ा अच्छा मिजाज है।"

बन्नाशात हुआ उसके ऊपर। अधिन कुछ जानने की इच्छा नहीं रही उस। तेनी म लौट पड़ी वह। अन्धकार छाया जा रहा था चारों ओर। जवान दे रहे थे उसका पैर।

अरुणोदय की लालिमा रक्त-रजित करने लगी गगामण्डल का। कार पर सगर हुए मिस्टर और मिसेज कपूर। रँगले से गहर निकली कार, लेकिन आगे नहीं बढ़ सकी। गाड़ी रोककर उतर पड़ा चन्द्रमोहन। उतर पड़ा लिलियन भी। सामने पड़ी थी एक स्त्री की लाश। समीप आकर वह झुका लाश पर। पक हो गया उसका चेहरा। सहम गई लिलियन।

“कौन है यह स्त्री ?”

“मेरी प्रेमिका !”

“तुमने क्यों छोड़ दिया इसे ?”

“तुम्हें मैं इससे ज्यादा प्यार करने लगा !”

“लेकिन वह तुम्हें मुझ से ज्यादा प्यार करती थी !”

“शायद। कहा नहीं जा सकता !”

आँसू छतार आये लिलियन की आँसों में। एक दीर्घ निश्वास गवाँचा चन्द्रमोहन ने।

एक कागज दबा था मुपमा के हाथ में। एक छोटी-सी खाली शाशी पड़ी थी एक ओर। कागज लेकर पढ़ने लगा चन्द्रमोहन। लिखा था उस पर—

“चन्द्रमोहन,

एक बार तुम से कहा था मैंने, कटक नहीं बनेंगी तुम्हारे लिये। आज भी वही निश्चय है मेरा। इसलिये विदा हो रही हूँ तुनिया से। सुखी रहो तुम ! मुपमा !”

“क्या है यह !”

कुछ कह नहीं सका वह। चुपचाप दे दिया उसने लिलियन के हाथ में वह पत्र। उमड़त हुये आँसुआ को रोकता हुआ, मनोमार्वा म लड़वा हुआ वह खड़ा रहा मूर्तिवत्। लिलियन ने भी पढ़ा वह पत्र। आँसुओं की झड़ी लग गई उसकी आँसों से। वह भी अन्न नहीं रक सगी अपने को। बरसने

## जीवन-क्रम

अपने छत्रमाल पुत्र की शार शामनय पैरा में देखने लुये, मुंरी माधवप्रसाद न कहा—“रात भर तुम यहाँ रहे मौन !”

प्रश की शार ताबने लुये, मोहाम्बाल ने उत्तर दिया—“एक मित्र के यहाँ दावत थी। रात ज्यादा हा गद गी, हमलिये यहीं रह गया था।”

“मित्र के यहाँ दावत थी। यहाता बनाने म तुम ताक हो। मित्र के यहाँ रहे या चौक में राप का ताम दुनने रहे !”

“यह दिनकुल भूठ है ! न जाने कौन मेर तिलाफ हमशा आपके फान भरा करता है। जरूर यह मेरे मित्री दुश्मन की कार्रवाई है !”

“श्रीग मैं यह पूछता हूँ, नि आपका कोर दुश्मन क्यों है ? नव चलन आदमी का कोर दुश्मन नहीं हाता।”

मादन सिर मुझाये लुये निस्तभ बैटा रहा।

“इतनी शाला तालीम पारर भी तुम दुभाग पर चलते हो, यह नई शम की रात है ! अगर तुम अपनी हाताल नहीं मुधागेगे, तो तुम्हें पछताना पडेगा। यह रात याद रखा !” कुरसी छाड़कर, यनील पाहब उठ गड़े लुये, और पुत्र क कमरे से बाहर चल गये।

तन मोहन नुरसी स उठा, और बिल्वरे पर लेटकर विचार म व्यस्त हो गया—“नाला म मरी शिनावत नैन करता है ? उसका पता लग जाता, - तो उसकी अच्छी तरह मरम्मत करा देता ! तुमारी अभी तक नहा गये ! जम्हाइर्या बरानर आ रही हैं। जनानी म कौन

रगौन मिजाज नहीं होता ! फिर, लाला मेरे ऊपर क्यों खूफ हुआ करते हैं ? बूढ़ हो रहे हैं, शायद इसीलिये । अभी उस दिन लाला के लँगोटिया पार रजनी गानु कहते थे, कि जगनी म लाला की चाल चलाने भी ठाक न था । मितने साफ आदमी है रजनी गानु ! अपने एग पर परदा डालना उन्द नहीं आता । 'जवाना मौप करने के लिये है, बुढ़ापा आक्रमत बनाने के लिये ।' मैं जिन्दगी के हर पहलू का तजररा हासिल करना चाहता हूँ । दुनिया में भौंदू उनकर खना मुझे पसंद नहीं ! लाला खूफा होते हैं, तो हुआ करें ! थोड़ी देर तक और मा लना चाहिये ।

बरगट बदलकर, उसने आँस पद कर ला । सहसा उमरी स्त्री, चन्द्रावती, ने कमरे म प्रवेश किया । आइट पाकर, मोहन ने पृच्छा—  
“बौन है ?”

“मैं हूँ ।”

“चन्द्रा ।”

“हाँ ।”

“दरगाजा गन्द कर दो, और मेरे पास आओ !”

“नहीं माप कीपिय । जिसके यहाँ रात भर गुलदरें उड़ते रहे, उमी को इन बरु भी बुना लात्रिये ।”

“मेरी बुराई करने वालों की शक्तों में तुम भी आ ग चन्द्रा ! तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास नहा ।”

“इतने दिनों से आपका बदला हुआ रंग अपनी ही आगा मे देख रही हूँ, तर दूसरों की बातों पर विश्वास कैसे न हा ? आपने ऊपर विश्वास बना मेरा वर्तव्य अमश्य है, मितु आपका भी तो विश्वास के बोध बनना चाहिये ।”

“तुम्हारा उवाल गलत है, चन्द्रा । जैसा मैं पहले या, वैसा ही अब भी हूँ ।”

“मेरा टपाल गलत है। आप शराब पाने लगे हैं, रोज प्राची रात से पल आप घर नहीं लाँटते, श्रीम श्रीम जी ज्ञान आये, तो शराब पिये हुय न।”

“जान यह हुआ कि मनोहर के बर्ण दासन थी, श्रीम मेरा शरीर होना बहुत जरूरी था। किसी के यहाँ मैं न जाऊँगा, तो मेरे यहाँ कोई क्या आयेगा? दासन न दर हुआ श्रीम रात बहुत ज्यादा हो गई, इस लिय मैं वहाँ टहर गया था। श्रीम दस्ता न मुझे ज़रूरदस्ती शराब पिला दी थी!”

“यह बहाना तो आप हमेशा कर दिया करते हैं। लेकिन, आप न पीना चाहें, तो आपका जोड़ नहीं पिला सकता।”

करवट बदलकर, रजाइ से गिर गहर निमालकर, मुस्कराती हुई आर्त्या से चन्द्रावती के मुख की ओर देखते हुये मादन ने गम्भार मान म कहा—“च दो। श्रीम सत्कार का तुम्हें बहुत कम अनुभव है। दास्तों के जाल से उच रहना असम्भव है।”

मान खिचकौ लगा, प्रजल प्रयत्न करके भी यह उसे रोकने न रह सकी। उसने विंचित मुस्कराकर कहा—“श्रीम बातों में आपसे पार पाना भी असम्भव है।”

हँसकर, रजाइ हटाकर, वह चारपाद से कूद पड़ा, श्रीम तुरन्त दर बाजा राल करने मुस्कराता हुआ उसकी ओर बढ़ा। मौत्र पर चूक जानेवाला आदमी यह न था।

श्रीम, चन्द्रावती यह भली भाँति जानती थी, कि कुमार्गगामी पति का सुधार नम्रता ही से किया जाता है, कड़वा से नहा।

×

×

×

उसी दिन संध्या समय माहनलाल सेठ दामोदरदास के सुपुत्र नारायणदास के साथ मोटर पर बैठा हुआ चौक की ओर चला जा रहा था।

मोहनलाल ने गम्भीरता से सिर दिलाते हुये कहा—“यह दुनिया  
अपनी जगह है, नारायणदासजी !”

“इसमें क्या शक है, मोहनजी ?”

“फिरने ही आदमी ता यहाँ ऐसे है जा बेमतलब दूसरा की बुराई  
किया करते है !”

“नियानब फी सदी लाग इसी तरह के हैं। ऐसे लोग उड़े मफार  
हाने हैं ! अपनी बुराईयाँ छिपाये रहने ही के लिये य दूसरा की बुराई  
करते है !”

“इधर कुछ दिनों से एक माहल मेरे पीछे पडे हुये है !”

“यह जात शरीफ कौन है ?” माथा सिफाड कर नारायणदास ने  
पूछा।

“यहा पता चल जाता तो हजरत को मज्जा न चरना देता !”

“ही ही ही-ही ! और इस एक काम में आपका तरलीफ न करनी  
पडती, उस इशारा काफी होता !”

“इस शख्स की बातों में आकर, लाला अन्तराग मुझे पदवार  
सुनाया करत है। कहते हैं, उदचलनी छाड़ो, ताखल (खा)। लभिन,  
पनाव, मेरा तो ख्याल यह है, कि इस मामले में हर शख्स का  
standard अलग अलग होता है !”

“आपका ख्याल विलकुल ठीक है, मोहनजी !”

“म तो इस सिद्धांत का फायल हूँ, ज ताब, eat, drink and  
be merry !” (खाओ, पियो और मस्त रहो।)

“गह ! मेरा भी यही सिद्धांत है ! देखिये उगर राध्याम कहता  
है—

आओ, मधुर बसन्त निभा में

मधु चाखा, भर दो प्याला,

अधुनापों के शिशिर बसन स

पडे होलिका की

समय विदगम को घड़ा ही  
 मार्गें पार करना है अब,  
 फैला दिये पक्ष ला, उससे,  
 दे घट उड़न हा याला ।”

“वाह, वाह ! निन्दगी की कैसा ज़रदस्ता फिलागफ़ी है !”

“एक-एक शब्द में जादू भर है, जनाब ! सारा योय उमर खय्याम की शायरी पर पिदा है ! जहाँ हर शहर में उमर खय्याम भव बन गय हैं ! उसकी रूपाइयाँ का अंगरजा में अनुवाद करके एडवर्ड फिज़जरल्ड ने उमर खय्याम का सारी दुनिया में मशहूर कर दिया और अपने किये में अंगरजी साहित्य में स्थायी स्थान बना लिया । देखिये, जनाब, उमर खय्याम आगे जाता है—

भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे,  
 आगे-पछे इधर-उधर,  
 नहीं और कुछ, यह माया की  
 छाया का है कौतुक भर ।  
 है 'फ़ानूस-ख़याल' एक यह,  
 दिनकर जिसका दापक है,  
 चारों ओर मृपाकारा ने  
 फाट रह है हम चरकर ।”

“वाह, वाह ! ससार की निरन्तरता का कैसा अदभुत वर्णन है !”

“अपने यहाँ भा तो विश्व का मायामय कहते हैं । फिर, चार दिन की इस निन्दगी को गलत ही कफन बाँधकर, रो-रोकर काटने में तो अफ़लमन्दी नहीं दिग्गद होती !”

“अफ़लमन्दी क्या ससार बयस्फी है ! जब तक निन्दगी है मौन करना चाहिये, और जब अन्त समय आ जाय तो किसी शायर के शब्दों में कहना चाहिये—

मेर को, फूल चुने,  
और बहुत गाद रह,  
घातर्षो जात हैं,  
गुलजन तेरा आयाद रह !”

“वाह ! क्या शेर है ! तब तक मिल म जाय है श्रीग जगती है,  
तभी तक हिंदगा का मजा है ! बुझाप म ता हर आत्मी का पहिर्यो  
रगड़-रगड़कर दिन काटने पड़त हैं । शर्माय, क्या त ता the  
hay while the sun shines ! शेरिय उभररभ्याम फिर पड़ता  
है—

वेद कि पात्र मरु अचानक  
ऋतुपति भी छिप जाय यहीं !  
और यत्न मुरमित जीवन का  
साता भी हो जाय यहीं !  
कीन जानता है गुलबुल,  
जा हन राजा पर गाती थी,  
कहाँ गइ अब और कहीं से  
चाहें थी, है भा रि नहीं !”

“वाह ! वाह ! बगी लतीफ न्याह है ! इस मुनकर कीन जिन्या  
दिल शकल फिर त धुत लगेगा ?”

“मन ता उमर रभ्याम की रभ्याश्या इतनी गार फड़ी है रि मर  
की सब कथकथ्य हो गई हैं । लापिय, जनार, निदिशत मामो आ  
गया !”

“निदिशत ! हा हा हा हा ! क्या याग कदी है आयो ! वाह !”

पाकनापी का दाना कम्पोजल लाग शमे जा चाय नह, लकिन  
में तो हने निदिशत ही समझता हूँ !”

“श्रीर म भी आपको इस अनमोल बात का हृदय से समर्थन करता  
हूँ । जहाँ सन्तित रे, यौन है मौदर्य है, स्वग यहाँ नदा ह तो फिर  
कहाँ है !”



माटर चौक में पड़ी। गैर-हों आते-जाते मनुष्यों, एस्कों, गाड़ियों और माटरों में फण-कड़ु शोक में धायुमसटल व्याप्त था। बातचीत करना असम्भव देखकर, दोनों मिन निम्नव्य हो गये।

एक गली के सामने पहुँचकर, माटर रुका। शोभर ने तुम्हें उतर पर दरवाजा खोला। प्रांगी की बाल्लें लिये हुए दोनों माटर से उतरे और गली में घुसे।

उम अद्भुत स्वर्ग की रूप, लागरय, यौवन-सज्जित एक अप्सरा के घर में द्वार सामने आ गया। चतूरे पर चक्कर, धे रुक। मोहनलाल दरवाजे की साकन खटखटाने लगा। दो तीन मिनट के बाद एक अर्धेड मारासी ने दरवाजा खोला।

“आदाय अज है, अहमद भियाँ !”

“आदाय अर्न है, सेठजी !”—दौत निकलकर, डांगी हिलाते हुये मीरासी ने उत्तर दिया।

“आदाय अर्ज, अहमदग्रली साहन !”

“आदाय अर्ज मोहन बाबू ! आप लोगों का इन्तिज़ार किया जा रहा है। तशरीफ ले चनिये।” मीरासी एक ओर हटकर अदब से खड़ा हो गया।

तब धे ऊपर गये। सामने के कमरे के दरवाजे पर खड़ी हुई धृती ‘गायिका’ ने कहा—“आइये, सेठजी ! आइये, मोहनबाबू !”

“आदाय अज है !”

”

आदाय अर्ज !”

“हमशा धूलिये फलिय !”

सब रुतरे में जा रुठे। नात्रिका पानदान खालकर पान लगाने लगी। जगल के कमरे का दरवाजा खुला, और नयी पिट्टन पान चनाती, मुस्कराती षटलाती हुए बाहर निकली। कमरे में सौंदर्य, यौवन एवं

सुगंध की लहरे भूमने लगा। आदाब-सलाम की झुंठी लग गई। बड़ी विद्वान नायिका क बगल में जा बैठी। नायिका ने पातों की तश्तरी महमाता की आर बढ़ा दी। दोनों मन्मानों ने पान स्वाय। नायिका क हाथ में दो रुपये देकर नारायणदास न कहा—“गज़ब, साझा और पान बसोरेह मंगा लीजिये।”

“बहुत अच्छा, अभा मँगाती हूँ।” कहती हुई उठकर, वह कमरे के बाहर चली ग।

आध घंटे के बाद प्रगत ने उद कमरे में शराब ढल रही थी। बड़ी विद्वान को रीचकर अपनी गार्द में मिठालकर, नारायणदास ने अपना गिलास उमड़ हाठा से लगा दिया। एक बार ‘उहूँक’ करके, बड़ा विद्वान ने थोड़ा-सी शराब पी ला। शक्ती शराब पीकर, खाली गिलास सामने रखकर, हाथ पटककर नारायणदास ने भूमते हुये कहा—

इस तरह तले कहीं खाने को  
 रोटा का टुकड़ा दो एक,  
 पीने को मधु पात्र पूरा हो,  
 करने को हो काय विवेक,  
 तिस पर इस सबाट में गुम,  
 बैठ बाल में गाती हो,  
 तो मन्दा मम इसा विज्ञान में  
 मुझे स्वर्ग का हो अमितेक।”

मोहनलाल ने भूमते हुये हँसि लगाइ—“बाह, बाह! क्या बात है! आप के जैसा निन्दा दिल दास्त पाता तामुमकिन है, नारायण दासजी।”

“मैं इल्म को तगम स्वाकर कहता हूँ, मोहनजी, अगर जरूरत हो, तो आप के सामने अपना सर काटकर रख सकता हूँ, मादनजी।”

“खुदा यह दिन १ दिताय ! लेकिन आप से मुझे ऐसी ही उम्मीद है !”

इधर ता रगरेनिया का बाजार गम था, और उधर मोहनलाल व अर्धइ रिता, मुश्या माधवप्रसाद अपने निस्तरे पर उदास भाव से लटे हुए थे। उनकी धर्मपत्नी श्रीमता रामदुलारी देवी उनके पर दाव रही थीं। तैराशय एव अग्नेनापूण स्वर म मुश्याजी ने कहा—  
‘अपन लायक का रग देव रही ही न ? अभी तक हज़रत नहीं लटि !’

“अब आता ही हागा !”

‘आता ही हागा ! उसकी तरफ स बकालत करने फं लिये ता तुम हमेशा तैजार रहती हा। तुम्हार दुलार १ उस निलकुन चौपट कर दिया !’

“सभी मातायें अपने बच्चों को प्यार करती हैं, लेकिन प्यार के कारण सभी बच्चे तो चौपट नहीं हा जाते !”

“सभी नहीं चौपट हो जाते, लेकिन मोहन तो हो गया ! मेरा ता यही खयाल है कि अगर तुम उसके ऊपर बड़ी नज़र रखती, तो वह कभी न रिगड़ता। बच्चों ने ऊपर किसी की गार्ता का उतना असर नहीं पड़ता जितना माँ की बातों का पडता है !”

“मैं तो उसे हमेशा समझाती-बुझाती रहती हूँ। और, मेरी समझ में मोहन खुद खराब लड़का नहीं है, साथियों ने उस रिगाड़ रखा है !”

“जिस आदमी में एव नहीं हाता, बुरे साथी उसे नहीं रिगाड़ सकते !”

रामदुलारी देवी को कोद उत्तर न सूझा। उनका भरतिष्क कहता था, पतिदेव सत्य कह ग्ये हैं, किन्तु उनके मातृ-हृदय में पुत्र के प्रति असीम दया उमड़ रही थी, और असीम स्नेह !

एक दीर्घ नि श्वास खींचकर, मुश्याजी ने कहा—“बेटा खराब से से खराब क्यों न हो, लेकिन उसके ऊपर साया डालने के लिये माँ का आचन हमेशा पड़पडाता रहता है !”

रामदुलारी देवी की आँसों में आँसू छलक आय।

×

×

×

छेद साल गाद की रात है। मुँशी माधवप्रसाद राग शय्या पर पड़े हुये थे। दा समाइ से उठे चर था। शहर के दो तामी डाकर उनका इलाज कर रहे थे, किंतु चर उतरने का नाम न लेता था। मोहनलाल की गिरु भक्ति न दिना एकाएक सजग हा गई थी। तन मन से वह पिता की सेवा कर रहा था।

रात्रि का समय था। मुँशीनी राग शय्या पर आँसू नद किये पड़े हुये कराह रहे थे। शय्या के समीप एक स्टूल पर बैठा हुआ मोहनलाल पिता का दाहिना पैर अपना गाद में रखे हुये एक रुमाल से तलुवे पर फेरे दे रहा था। आँसू खालकर पुनः का आरंभ तार दृष्टि से चर कर, मुशीनी ने क्षीण स्वर में कहा—“माहन !”

‘जी हाँ, लाला !’

“जरा मुझे जल पिला दो बेटा !”

‘रहुत अच्छा, लाला !’

पिता का पैर सावधानी से धिस्तरे पर रखकर, उठकर, उधर उन आलमारा के समीप जाकर, एक बाल से शश के एक गिलास में थोड़ा-सा जल लेकर, शय्या के समीप जाकर उसी नमोल स्वर में कहा—“जल लीजिये लाला !”

“अच्छा, पिला दो !”

बाय हाथ से सारा देकर, उसी गिलास का चौकल दिया। तब उसके हाथ से गिलास लेकर, उठने जल पिया। गिलास उसे देकर वह खेत गये। गिलास धोकर, आलमारी में रखकर वह स्टूल पर जा बैठा, छीर पिता का दूसरा पैर अपनी गाद में लेकर तलुवे में फर देन लगा। कराइकर मुशीनी ने कहा—“माहन !”

“जी हाँ !”

“मैं तुमसे दूँ गुरा हूँ, बस ! तुमसे आना पता पूरी तरह पूरा कर दिया । मुझे मालूम था कि बहुत जल्द बदरपी का साथ खोभ मुझे अपना ऊपर लाता पड़ेगा, और मुझे यकीन है कि तुम इस काम के फायदेवाली हो । इस बात में तुम एक दरदरमान्य कराना चाहता हो ?”

“आपका इकल मरना बस पता है”—शब्दों में से मोहन ने कहा ।

अब, तुम्हारे मुँह में यही सुनना चाहता था । बेगी यह इच्छा है कि अब मैं तुम आगरी माथि, स बस और मुमार्ग पर चला ।”

महात्मा निकम्ब रहा ।

“तुम्हारा ही घटा, जिस तुम लाइएगा त पानोगे, अगर जगता होना तुम्हारा अर्थात् के अपने पापों बलगत, तो तुम्हारे दिल का हालत का हागी, तुम्हारे गौर करो । इसलिये, तुम्हें बेगी खातिर घड़ी करना चाहिये, जो कुछ उम्हारी खातिर तुम्हारे घेरे का करना चाहिये ।”

गिरिध भावां से आन्दोलित, मोहन निरन्तर बीटा हुआ फेरे देता रहा ।

“बेला, बटा । क्या कहते हो ?”

“आप की बात बिलकुल सही है । मुझे अपनी हरकतों पर अफसस है । अब मैं आप से वादा करता हूँ कि आगे से मुमार्ग ही पर चलने की काशिश करूँगा ।”

“काशिश करूँगा नहीं, फटा ‘चलूँगा’ ।”

“जी हाँ, चलूँगा ।”

“अब अब मुझे हतमाना हो गया । अब अगर मरता है, तो शान्ति से मरूँगा ।”

“यह आप क्या कहते हैं, लाला ! आप बहुत जल्द अच्छे हो जायेंगे !”

“नदी बेग ! अब मुझ हिन्दगी की उम्मीद नहीं है !”—उन्होंने  
श्रीत बंद कर लीं ।

मोहनलाल की श्रांति म श्रांति छलक आये ।

दूसरे दिन तीसरे पहर श्री जी का देहावसान हो गया । घर में  
कोशराम मच गया । जब तक मनुष्य जीवित रहता है, वह अपने चारों  
ओर ममत्व का जाल धुनता रहता है ! उठम वह दूसरा का पँसाये  
रखता है, और खुद भी पँसा रहता है ! और, एक दिन एकाएक  
जाल से निकलकर जब वह अज्ञात लोक की ओर चल देता है, तो  
जाल कैसे हुये रोग उसके लिये फिर धुनने लगते हैं ।

×

×

×

उत्तरदायित्व मोहनलाल का सुमार्ग पर सींच लाया । उनके पिता  
यथेष्ट सम्पत्ति छोड़ गये थे । पढाइ छोड़कर, वह जायदाद की देख-  
रेख करने लगे ।

रगरेलियाँ की महफिल उजड़ गई । उनके मनचले साथियों ने  
निराश होकर उनका पीछा छोड़ दिया । खर-रँग से खिचकर उनका  
मन घर म केन्द्रित हो गया ।

कुम्हलाती हुई लता हरी हो गई । चन्द्रावती देवी के ध्यानन्द और  
सत्तोप का ठिकाना गया । सास तथा पति की सेवा और तीन बच्चों के  
अपने स्वरूपमान, स्वस्थ पुत्र का लालन पालन वह तन मन से करती,  
और इसी में अपने जीवन का सार्थक समझती ।

सुरा की समस्त विभूतियाँ उस घर को प्राप्त थीं । लोग उसे ईर्ष्या  
की दृष्टि से देखते थे ।

दिन का तीसरा पहर था । एक सुवर्जित कमरे में एक कोच पर  
चन्द्रावती और मोहनलाल बैठे ! । भाँति भाँति के लिलौनों का  
द्वेर सामने रखे हुए फर्श पर बैठा हुआ प्रनाथ खेल रहा था ।

मोहनलाल ने मुस्कराते हुए कहा—“तुम्हारा प्रकाश बड़ा लायक

१७७

१७७

“उमीर तो मुझे भी महा है।”

“‘हाादार निरवान क होन चीरने पात !’ इसकी बुद्धि बड़ी तेज है, और इसक रग-रग में चुस्ती भरी हुई है।”

चन्द्रावती प्रकाश की आर सरल गर्व से देखने लगी।

“इसना मत्था कितना चौड़ा है, इसकी आँखें कितनी बड़ी-बड़ी हैं, और नाक कितनी साधी और तुफली है ! इसना चेहरा कहता है, कि इमे प्रकाण्ड पंडित होना चाहिये !”

मातृ-सौह से निहल हानर, मोस छोडकर, चन्द्रावता पुन के समीप तुरन्त जा पहुँची, और फर्श पर बैठकर, पुत्र को गोद में लेकर, बार-बार उसका मुख चूमने लगी। तब, उठकर, मोहनलाल मुस्कराते हुए उन दाना की ओर बढे।

×

×

×

सत्तरह बर्य नील गये। बाबू मोहनलाल अब अघट हो गये थे। जमादारी की देख-रेख, गंगा-स्नान, पूजा-पाठ और दान पुण्य करना, यही उनका कार्यक्रम था।

उनका घर भर-पूरा था। धन की कमी न थी। तीन बच्चे थे, दो लडके और एक लडकी। और, गृहस्थी का मुचारू-रूप में संचालन करने के लिये चन्द्रावती-भी चतुर गृहिणी थी।

बाबू साहन के सुखी जीवन में केवल एक खटक थी। वह थी बड़े लडके, प्रकाशचंद्र की उच्छ्वलता।

प्रकाश अब जवान हो गया था, और विश्वविद्यालय के बी० ए० की पढाई में पढता था। वह रगीन मित्राज था, और रगीन मित्राज साथिया के साथ रहना ही उसे पसन्द था।

एक पहर रात जा चुकी थी। बाबू साहन अपने शयनागार में पलंग पर लटे हुए थे, और चन्द्रावती देवी उनक पैर दाब रही थी।

बाबू साहब ने चिन्तित स्वर में कहा—“देख रही हो, चन्द्रा, अपने प्रकाश का हाल ! अभी तरु नहीं आया !”

“शाम के वक्त, उसने कहा था कि हास्टल में एक लडक्य के साथ पढ़ने जा रहा हूँ । वहीं देर हा गन् हागी, आत, होगा ।”

“अजी, वह पक्का बहानेबाज है । पन्ने खदने नहीं गया, आवा रगी करने गया है !”

“लोगों ने आपसे झूठी शिकायत की है । यह ऐसा नहीं है !”

“सब लोग झूठे हैं और वह अकेला सचा है । गहरी आपकी बुद्धि !”

“शिकायत सही भी हो, ता इसमें कौन-सी प्रनाली बात है ! जवानी म सभी थोडा-बहुत निगड जाते हैं !”

चन्द्रावती के शब्दों में छिपी हुई ताड़ना ने उन्हें निस्तब्ध कर दिया । उन्होंने करवट बदल ली ।

“उसकी चाल-चलन के बारे म आपको शक है, तो आप उसका शादी क्यों नहीं कर देते ?”

“यह तो अन करना ही होगा !” एक दीर्घ निश्वास गान कर, बाबू साहब ने कहा ।

सदसा सदर दरवाजे की जज़ीर खटगटाइ जाने लगी । फिर किसी ने आवाज़ लगाई—“बाबू साहब ! बाबू साहब !”

“कौन आवाज़ लाा रहा है ?” बाबू साहब ने कहा ।

“बुद्धू और बेनी तो गहर सो ही रहे हैं, दरगाज़ा गोलकर देख लगे !”

“कहाँ प्रकाश तो नहीं आया है ! ठहरो, मैं जानर देगता हूँ ।” फलग से उतरकर, चण्णल पहाकर, बाबू साहब कमरे से गहर निकल ।

गहर पहुँचकर, बाबू साहब ने देखा, बुद्धू और बेनी प्रकाश को सँभालते हुए सड़े थे । यह बेहोश था ।



‘अच्छा, हतरा की यह हालत है। इन्हें यह कौन लाया था बेनी ?’

‘सरकार ! मरणा क दो साथी पड़ेना गये थे। यही लोग कहते थे कि मरणा दाम् ब्यादा की गत है, इसलिये वे बेहारा हैं।’

‘तुमने उन लोगों को रक्षा करा नहीं ?’

‘हमना राना ता था, सरकार ! लेकिन यह नहीं रहे, क्या कि हमें जल्दा है।’

‘अच्छा, इन्हें हाथे थारे म ले गला !’

‘बहुत अच्छा, सरकार !’

दाता गौहर और बाबू साहय प्रचार को द्विती तम्ह उनके कमरे तक गये। वह मिलने पर लेटा दिया गया। चन्द्रावती देवी दीड़ी आई। उनकी आर अरहेना की टाटि से देखकर, बाबू साहय ने कहा—‘देख ला अना मरुत की हालत !’

‘अच्छा, बाद में रिगड़ लोता, पहले डाक्टर बुलवाओ !’

शिर कुनाप हुय बाबू साहय कमरे से बाहर निकले। उनके नेम सल्ल ग। चहसा, पूर्व-काल का एक कहरा दरय उनही अस्थि के सामने था गया। राग सम्या पर पड़े हुय उावे रिता उनसे कह रहे थे—‘तुम्हारा ही बेटा, जिसे तुम बड़े लाडल्यार से पालागे अगर जवान होकर तुम्हारी अस्थि के सामने पापड़ वेगा, तो तुम्हारे दिल की हालत बना होगी ? तुम्हा और करो।’

बाबू साहय की अस्थि से अस्थि डुलको लगे। उन अस्थि में मावो का तूपान था।

